प्रश्नोपनिषद्

अनुवादक—

रायबहादुर बाबू जालिमसिंह

केसरीदास सेठ द्वारा

नवलकिशोर प्रेस में मुद्रित और प्रकाशित

सन् १९२३ ई०

लखनऊ

द्वितीयवार] [१०००

रायबहादुर बाबू जालिमसिंह.

आदौ मङ्गलाचरणम् ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ वन्दे शैलसुतापतिं भयहरं मोक्षप्रदं प्राणिनां मोहध्वान्तसमूहभञ्जनविधौ प्राभास्करं चान्वहम् । यद्बोधोदयमात्रतः प्रविलयं विघ्नस्य शैलव्रजा यान्त्येवाखिलसिद्धयः प्रतिदिनं चाद्यन्तहीनं परम् ॥ १ ॥

यं ध्यायन्ति मुनीश्वराः प्रतिदिनं संयम्य सर्वेन्द्रियाण्यवाक् तीर्थजलाभिषिक्तशिरसो नित्यक्रियानिर्वृताः । षट्चक्रादि विचारसारकुशला नन्दन्ति योगीश्वराः तं वन्दे परमात्मरूपमनघं विश्वेश्वरं ज्ञानदम् ॥ २ ॥

दो० करौं वन्दना ब्रह्मको, जो अनन्त निजरूप ।
जेहि जाने जग भ्रम सकल, मिटै अन्धतम कूप ॥
नाम रूप जामें नहीं, नहीं जाति अरु भेद ।
सो मैं पूरण ब्रह्म हूं, रहित त्रिविध परिछेद ॥
ब्रह्मभाग जो उपनिषद, ताका करूं विचार ।
भाषा में तिस अर्थको, लखै सकल संसार ॥
सन्त संग से जो लख्यो, सो मैं करूं बखान ।
परमानन्द सहाय ते, जाने सकल जहान ॥
पुरी अयोध्या के निकट, अकबरपुर है गांव ।
जन्मभूमि मम जान तू, जालिमसिंहहिं नांव ॥

यह संसार असार महाअपार समुद्र है, इस के पार होने के लिये उपनिषद् अद्भुत अलौकिक अद्वितीय नौका है, जिस में बैठकर असंख्य सज्जन मुमुक्षुजन विना प्रयासही ऐसे दुस्तर सागरके पार होगये हैं, और होते जाते हैं, और भविष्यत्काल में होंगे, जो मुमुक्षुजन हैं

उनके हितार्थ यह भाषा टीका रची गई है। इस टीका में पहिले मूलमन्त्र है, फिर पदच्छेद है, फिर वामहस्त की ओर संस्कृत अन्वय दिया है, और दक्षिण हस्तकी ओर पदार्थ लिखा है, यदि वामतरफ का लिखा हुआ ऊपर से नीचेतक पढ़ाजावे तो उत्तम संस्कृत मिलेगा, और यदि दक्षिण हस्तके तरफवाला पढ़ाजावे तो पूरा अर्थ मन्त्रका मध्यदेशीय भाषा में मिलेगा, और यदि बायेंतरफ से दहिने तरफ को पढ़ाजावे तो हरएक संस्कृत पदका अर्थ भाषा में मिलैगा, जहांतक होसका है, प्रत्येक संस्कृत पदका अर्थ विभक्तिके अनुसार लिखागया है, इस टीका के पढ़ने से संस्कृत विद्याका भी अभ्यास होगा, इस टीका में मूलका कोई शब्द छूटने नहीं पाया है, और मन्त्रका पूरा २ अर्थ उसीके शब्दोंहीं से सिद्ध कियागया है, अपनी कल्पना कुछ नहीं कीगई है, हां कहीं कहीं ऊपर से संस्कृत पद मन्त्र के अर्थ स्पष्ट करने के लिये रखागया है, और उस पदके प्रथम यह + चिह्न लगा दिया गया है, ताकि पाठकजनोंको विदित होजावे कि यह पद मूलका नहीं है। इस टीकाको बाबू ज़ालिमसिंह, निवासी ग्राम अकबरपुर ज़िला फ़ैज़ाबाद हेड पोस्टमास्टर नैनीताल व लखनऊ व पोस्टमास्टर जनरल रियासत ग्वालियर सहित अत्यन्त सहायता पण्डित गङ्गादत्त ज्योतिर्विद निवासी मुरादाबादाभिधपत्तन और पण्डित रामदत्त ज्योतिर्विद निवासी अलमोड़ाख्य नगर के रचकर शुद्ध निर्मल हृदयाकाशवान् पुरुषों के चरणकमल में अर्पण करता है और आशा रखता है कि जहां कहीं अशुद्धताहो उससे टीकाकर्ता को सूचना करें ताकि अशुद्धता दूर होजावे ॥

श्रीगणेशाय नमः ।

प्रश्नोपनिषद्

मूलम् ।
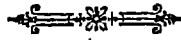
ॐ सुकेशा च भारद्वाजः शैब्यश्च सत्यकामः सौर्य्यायणी च गार्ग्यः कौशल्यश्चाश्वलायनो भार्गवो वैदर्भिः कबन्धी कात्यायनस्ते हैते ब्रह्मपरा ब्रह्मनिष्ठाः परं ब्रह्मान्वेषमाणा एष ह वै तत्सर्वं वक्ष्यतीति ते ह समित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्नाः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

सुकेशा, च, भारद्वाजः, शैब्यः, च, सत्यकामः, सौर्य्यायणी, च, गार्ग्यः, कौशल्यः, च, आश्वलायनः, भार्गवः, वैदर्भिः, कबन्धी, कात्यायनः, ते, ह, एते, ब्रह्मपराः, ब्रह्मनिष्ठाः, परम्, ब्रह्म, अन्वेषमाणाः, एषः, ह, वै, तत्, सर्वम्, वक्ष्यति, इति, ते, ह, समित्पाणयः, भगवन्तम्, पिप्पलादम्, उपसन्नाः ॥

अन्वयः	पदार्थ
भारद्वाजः	भरद्वाज ऋषिका पुत्र
सुकेशा	सुकेशा १
च	और
शैब्यः	शिविका पुत्र
सत्यकामः	सत्यकाम २
च	और
गार्ग्यः	गर्ग गोत्रवाला
सौर्य्यायणी	सौर्यायणि ३
च	और
आश्वलायनः	अश्वल मुनि का पुत्र

कौशल्यः=कौशल्य ४
भार्गवः=भृगु गोत्रवाला
वैदर्भिः=वैदर्भि ५
च=और
कात्यायनः=कत्य का पुत्र
कबन्धी=कबन्धी ६
ह=प्रसिद्ध
एते ते= { ये यानी पूर्वोक्त छवों ऋषि }
ब्रह्मपराः= { अपर ब्रह्मको याने अपरा विद्या को जानते हुये }
+ च=और
ब्रह्मनिष्ठाः= { अपरा विद्या के उपासक होते हुये }
+ च=और
परम्ब्रह्म= { परब्रह्म को याने पराविद्या को }
अन्वेषमाणाः=खोजते हुये
समित्पाणयः= { समिधी फल और पुष्प आदि हाथ में लियेहुये }
ह=प्रसिद्ध
भगवन्तम्=पूज्य
पिप्पलादम्= { पिप्पलाद नामक आचार्य के }
उपसन्नाः=समीप
+ बभूवुः=प्राप्त होतेभये
इति=ऐसा
ह=सोच करके कि
एषः=यह
+ पिप्पलादः=पिप्पलाद आचार्य
वै=निश्चय करके
सर्वम्=संपूर्ण
तत्=उस परमब्रह्म को
वक्ष्यति=कहेगा

भावार्थ ।

पूर्व मन्त्ररूप मंडूक उपनिषद् के भावार्थ को लिखकर अब उसी की व्याख्यारूप जो प्रश्नोपनिषद् है, तिसके भावार्थ को लिखते हैं, इस उपनिषद् में जो प्रश्न और उत्तर करके कथा लिखी है, सो केवल ब्रह्मविद्या की स्तुति के लिये और ब्रह्मचर्य्यादि साधनों की विधान के लिये लिखी है ॥ सुकेशा चेति ॥ भरद्वाज का पुत्र सुकेशा १, शिवि का पुत्र सत्यकाम २, सूर्य्य का पुत्र गर्ग ३, आश्वलायन का पुत्र कौशल्य ४, भृगुका पुत्र वैदर्भि ५, कत्यऋषि का पुत्र कबंधी ६, ये सब छवो ऋषि अपराविद्या को जानते हुये और उसकी उपासना करते हुये पराविद्या को अन्वेषण करते हुये समिधि फल फूलादि हाथ में लिये हुये प्रसिद्ध पूज्य पिप्पलाद नामक आचार्य के समीप गये, ऐसा निश्चय करते हुये कि वह हमारे संपूर्ण प्रश्नों का यथार्थ उत्तर देवेंगे ॥ १ ॥

मूलम् ।

तान् ह स ऋषिरुवाच भूय एव तपसा ब्रह्मचर्य्येण श्रद्धया संवत्सरं संवत्स्यथ यथाकामं प्रश्नान् पृच्छथ यदि विज्ञास्यामः सर्वं ह वो वक्ष्याम इति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तान्, ह, सः, ऋषिः, उवाच, भूयः, एव, तपसा, ब्रह्मचर्य्येण, श्रद्धया, संवत्सरम्, संवत्स्यथ, यथाकामम्, प्रश्नान्, पृच्छथ, यदि, विज्ञास्यामः, सर्वम्, ह, वः, वक्ष्यामः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
सः	यह
ऋषिः	पिप्पलाद ऋषि
तान्	उनसे
ह	निश्चय करके
इति	ऐसा
उवाच	कहताभया कि
+ यद्यपि यूयं तपस्विनः	यद्यपि तुम सब तपआदि करके युक्त हो
+ तथापि	तौभी
भूयः	फिर
एव	अवश्य
तपसा	तपस्या करके
ब्रह्मचर्येण	ब्रह्मचर्य करके
च	और
श्रद्धया	आस्तिकबुद्धि करके
संवत्सरम्	एकवर्षतक
संवत्स्यथ	मेरे समीपनिवास करोगे
+ ततः	तत्पश्चात्
यथाकामम्	इच्छानुसार
प्रश्नान्	प्रश्नों को
पृच्छथ	पूछोगे
+ तदा	तब
यदि	अगर
वयम्	हम
विज्ञास्यामः	प्रश्नों के उत्तरों को जानते होंगे
तदा	तब
ह	अवश्य
वः	तुम्हारे प्रति
सर्वम्	संपूर्ण
वक्ष्यामः	कहेंगे

भावार्थ ।

तानिति । सूक्ष्मदर्शी पिप्पलाद ऋषि उन छत्रों ऋषियों से कहते भये ॥ कि हे ऋषियो ! यद्यपि आप लोगोंने पूर्वतपादिकों को किया

है, तो भी ब्रह्मविद्या के ग्रहण के लिये फिर भी आप सब कोई ब्रह्मचर्य्यरूपी तपको श्रद्धाके साथ करो, हे ऋषियो ! स्त्री का स्मरण करना १, उसके साथ क्रीड़ा करना २, उसके तरफ देखना ३, छुप करके उससे संभाषण करना ४, उसकी प्राप्ति का संकल्प करना ५, उसके भोगने का निश्चय करना ६, उसके साथ संबन्ध करना ७, वीर्य का त्याग करना ८, ये आठ प्रकार के मैथुन कहे गये हैं, इससे रहित होने का नामही ब्रह्मचर्य्य है, गुरु और वेदवाक्यों में आस्तिक बुद्धि का करना श्रद्धा है, ऐसी आस्तिक बुद्धि और ब्रह्मचर्य्य से सम्पन्न होकर आप सब एक वर्ष पर्यंत मेरे समीप निवास करो, उसके पश्चात् जैसी आप सबकी इच्छा हो प्रश्न करना, यदि मैं आप लोगों के प्रश्नों के उत्तर को दे सकूंगा तो अवश्य दूंगा ॥ २ ॥

मूलम् ।

अथ कवन्धी कात्यायन उपेत्य पप्रच्छ भगवन् कुतो ह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, कवन्धी, कात्यायनः, उपेत्य, पप्रच्छ, भगवन्, कुतः, ह, वै, इमाः, प्रजाः, प्रजायन्ते, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	एक वर्ष के पीछे	भगवन्	हे भगवन्
कात्यायनः	कत्य का पुत्र	इमाः	ये
कवन्धी	कवन्धी	प्रजाः	ब्राह्मणादि प्रजा
उपेत्य	पिप्पलाद मुनि के समीप आकर	कुतः	कहां से
इति	ऐसा	ह वै	निश्चय करके
पप्रच्छ	पूछता भया कि	प्रजायन्ते	उत्पन्न होती हैं

भावार्थ ।

अथैति । उन छवों ऋषियों ने ब्रह्मचर्य्यरूपी तपको श्रद्धा करके एक वर्ष तक आचार्य पिप्पलाद ऋषि के पास जाकर निवास करके उसके पश्चात् अपने २ प्रश्नों को पूछते भये, प्रथम कात्य के पुत्र कवंधी ने पूछा, हे भगवन् ! किस कारण विशेष से यह नानाप्रकार की चर अचर प्रजा उत्पन्न होती है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

तस्मै स होवाच प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते रयिं च प्राणं चेत्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

तस्मै, सः, ह, उवाच, प्रजाकामः, वै, प्रजापतिः, सः, तपः, अतप्यत, सः, तपः, तप्त्वा, सः, मिथुनम्, उत्पादयते, रयिम्, च, प्राणम्, च, इति, एतौ, मे, बहुधा, प्रजाः, करिष्यतः, इति ॥

अन्वयः   पदार्थ

ह=प्रसिद्ध
सः=वह पिप्पलादाचार्य्य
तस्मै=उस कात्यायन कवंधी से
इति=ऐसा
उवाच=कहता भया कि
वै पुरा=सृष्टि के आदि में
प्रजापतिः=स्थावर जंगमप्रजा का स्वामी
प्रजाकामः=प्रजाकी उत्पत्ति की कामना करताहुआ
सः=वह प्रजापति
तपः=सृष्टि विषयक विचार को
अतप्यत=विचारता भया
+ ततः=उसके पश्चात्
सः=वह
तपः=सृष्टिविषयक कार्य को
तप्त्वा=अण्डोत्पत्ति आकाशादि सृष्टि-कर्म से सृज के
रयिम्=अन्नरूप चन्द्रमा
च=और
प्राणम्=अन्न का भोक्ता अग्नि-रूप सूर्य
इति=इन
मिथुनम्=दोनों को

उत्पादयते=उत्पन्न करता भया
च=और
सः=वह
इति=ऐसा
+ अविचारयत=सोचताभया कि
एतौ=ये दोनों

मे=मेरी
प्रजाः=प्रजाओं को
च=अवश्य
बहुधा=बहुत
करिष्यतः=करेंगे याने वृद्धिको
प्राप्त करेंगे

भावार्थ ।

तस्मै स होवाचेति । तब उस कात्यायन कबंधी के प्रति पिप्पलाद कहते भये ॥ हे ऋषि ! पूर्वजन्म के कर्मों के फल करके कल्पके आदि में हिरण्यगर्भ प्रथम उत्पन्न हुआ, वह हिरण्यगर्भ प्रजाकी उत्पत्ति की इच्छावाला होकर तपको करता भया, अर्थात् प्रजा को उत्पन्न करना चाहिये ऐसा विचार करता भया, तत्पश्चात् आकाशादि को रच करके प्रथम चन्द्रमा और सूर्यको उत्पन्न किया, फिर उन्हीं करके साध्य जो संवत्सररूपी काल है, उसको रचता भया, फिर सूर्य्य चन्द्रमा करके साध्य जो व्रीहि यवादिरूप अन्न है, उनको रचता भया, फिर अन्न से वीर्य्य को उत्पन्न करता भया, वीर्य से मनुष्यादि प्रजा को रचता भया, और सब के साधनभूत जो स्त्री पुरुष जे हैं उनको रचता भया ॥ ४ ॥

मूलम् ।

आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा रयिर्वा एतत्सर्वं यन्मूर्त्तं चामूर्त्तं च तस्मात्मूर्त्तिरेव रयिः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

आदित्यः, ह, वै, प्राणः, रयिः, एव, चन्द्रमाः, रयिः, वै, एतत्, सर्व्वम्, यत्, मूर्त्तम्, च, अमूर्त्तम्, च, तस्मात्, मूर्तिः, एव, रयिः ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
ह=निश्चय करके	अमूर्त्तम्=सूक्ष्म
आदित्यः=सूर्य	सर्वम्=सब है
वै=ही	एतत्=यह
प्राणः=प्राणरूप भोक्ता अग्नि है	रयिः=रयि याने भोग्यरूप
+ च=और	+ वै=ही
चन्द्रमाः=चन्द्रमा	+ अस्ति=है
एव=ही	+ परंतु=परंतु
रयिः=अन्न है याने भोग है	तस्मात्=भेददृष्टि से
च=और सूर्य चंद्र की अभेद दृष्टि से	+ तु=तो
यत्=जो	मूर्त्तिः=स्थूल
मूर्त्तम्=स्थूल	एव=ही
च=और	रयि=रयि याने भोगरूप
	अस्ति=है

भावार्थ ।

आदित्य इति ॥ पूर्वले मन्त्र में जो रयि और प्राण शब्द कथन किये हैं उनके अर्थ को अब दिखाते हैं ॥ आदित्यः ॥ प्राण नाम आदित्य का है, और रयि नाम चन्द्र का है, सूर्य और चन्द्र पद करके सूर्यलोक और चन्द्रलोक विषे स्थित पुरुष का ग्रहण है, प्रत्यक्ष सूर्य और चन्द्र का नहीं, ये केवल जड़ भूलोक की तरह हैं वह पुरुष उपाधि सम्बन्ध से दो रूप करके याने भोक्ता और भोग्य से स्थित है, चाहे वह मूर्त हो अथवा अमूर्त हो, भोग्य सब चन्द्रमारूप हैं, मूर्तशब्द करके पृथ्वी, जल, तेज का ग्रहण है, और अमूर्त शब्द करके वायु, आकाश का ग्रहण है, सूर्य का नाम प्राण, अग्नि, और भोक्ता भी है, वैसेही चन्द्रमा का नाम रयि, जल, भोग्य है, याने वह पुरुष भोक्ता भोग्यरूप धारण करके सम्पूर्ण सृष्टि को उत्पन्न, पालन, पोषण करता है, अथवा सांख्यशास्त्र अनुसार पुरुष प्रकृति होकर सृष्टि की रचना करता है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

अथादित्य उदयन् यत्प्राचीं दिशं प्रविशति तेन प्राच्यान्प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते यद्दक्षिणां यत्प्रतीचीं यदुदीचीं यदधो यदूर्ध्वं यदन्तरा दिशो यत्सर्वं प्रकाशयति तेन सर्वान् प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते ६ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, आदित्यः, उदयन्, यत्, प्राचीम्, दिशम्, प्रविशति, तेन, प्राच्यान्, प्राणान्, रश्मिषु, सन्निधत्ते, यत्, दक्षिणाम्, यत्, प्रतीचीम्, यत्, उदीचीम्, यत्, अधः, यत्, ऊर्ध्वम्, यत्, अन्तराः, दिशः, यत्, सर्वम्, प्रकाशयति, तेन, सर्वान्, प्राणान्, रश्मिषु, सन्निधत्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	और
यत्	जिस कारण
उदयन्	उदय होता हुआ
आदित्यः	सूर्य
प्राचीम्	पूर्व
दिशम्	दिशा को
प्रविशति	अपने किरणों से व्याप्त करता है
तेन	तिसी कारण
प्राच्यान्	पूर्व दिशासम्बन्धी
प्राणान्	प्राणियों को
रश्मिषु	अपने किरणों विषे
सन्निधत्ते	अन्तर्गत करता है
+ एवम्	इसी प्रकार
यत्	जिस कारण
दक्षिणाम्	दक्षिणदिशा को
यत्	जिस कारण
प्रतीचीम्	पश्चिमदिशा को
यत्	जिस कारण
उदीचीम्	उत्तर दिशा को
यत्	जिस कारण
अधः	अधोलोक को
यत्	जिस कारण
ऊर्ध्वम्	ऊर्ध्वलोक को
यत्	जिस कारण
अन्तराः	कोण
दिशः	दिशाओं को
+ च	और
यत्	जिस कारण
सर्वम्	संपूर्ण लोकों को
+ सः	वह
प्रकाशयति	प्रकाश करता है
तेन	इसी कारण
सर्वान्	सब लोकस्थ
प्राणान्	प्राणियों को
रश्मिषु	अपनी किरणों विषे
सन्निधत्ते	अंतर्गत करता है याने सर्वव्यापक रूप आत्मा है

भावार्थ।

अथेति। सूर्य प्रातःकाल पूर्वदिशा से उदय होकर आकाश में गमन करता हुआ पश्चिमदिशा में अस्त होता है और अपने प्रकाश से इन दिशों के मध्य विषे स्थित लोकों के चक्षु इन्द्रियों को जिस में वह अपने आप सूक्ष्मरूप से प्रवेश करके बैठा है किरणों करके पदार्थों के देखने की शक्ति देता है, और अपने किरणों द्वारा उनके शरीरों में बाह्याभ्यन्तर होकर उनका पालन पोषण करता है इसी प्रकार जब सूर्य दक्षिण उत्तर अधः ऊर्ध्व दिशाओं में और ईशानादिक कोनों में प्रवेश करता है तब उन विषे स्थित लोकों को अपने किरणों से आच्छादित करके उन में विराजमान होता है, और उनकी वृद्धि को करता है, इसीवास्ते सब लोकों का प्रकाशक केवल एक सूर्यही है वही व्यापक आत्मा है, उसके आश्रय सम्पूर्ण प्राणी हैं ॥ ६ ॥

मूलम्।

स एष वैश्वानरो विश्वरूपः प्राणोऽग्निरुदयते तदेतदृचाभ्युक्तम् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः।

सः, एषः, वैश्वानरः, विश्वरूपः, प्राणः, अग्निः, उदयते, तत्, एतत्, ऋचा, अभ्युक्तम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः	सो	उदयते	सूर्यरूप होकर उदय को प्राप्त होता है
एषः	यह	+ च	और
प्राणः	प्राणभूत	तत्	ऐसाही
विश्वरूपः	बहुरूप	एतत्	यह
वैश्वानरः	सर्वात्मा	ऋचा	मंत्र करके भी
अग्निः	अग्नि	अभ्युक्तम्	कहागया है

भावार्थ ।

स एष इति । सोई प्रकाशरूप सूर्य सम्पूर्ण पुरुषों को प्रत्यक्ष वैश्वानर-रूप अग्नि है, वही सर्वरूपका कारण है, वही दाह प्रकाश का हेतु है, और वही ऊर्ध्वगमन करनेवाला है, ऐसेही मन्त्र ने भी कहा है ॥ ७ ॥

मूलम् ।

विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तं सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्य्यः ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

विश्वरूपम्, हरिणम्, जातवेदसम्, परायणम्, ज्योतिः, एकम्, तपन्तम्, सहस्ररश्मिः, शतधा, वर्तमानः, प्राणः, प्रजानाम्, उदयति, एषः, सूर्य्यः ॥

अन्वयः	पदार्थ
सहस्ररश्मिः	असंख्य हैं किरण जिसके
शतधा वर्तमानः	अनेकरूप हैं जिसके
प्रजानाम्	चराचर प्रजाओंका
प्राणः	प्राणभूत है जो ऐसा
एषः	यह
+ सूर्यः	सूर्य
उदयति	उदय को प्राप्त होता है
+ एनम्	इसी को
+ सूरयः	बुद्धिमान् लोक
विश्वरूपम्	सर्वरूप
हरिणम्	किरणवाला
जातवेदसम्	उत्पन्न हुआ है ज्ञान जिसको याने ज्ञानस्वरूप
परायणम्	सर्वाधिष्ठान
ज्योतिः	सब प्राणियों का चक्षुभूत
एकम्	अद्वितीय
तपन्तम्	तपानेवाला
वदन्ति	कहते हैं

भावार्थ ।

विश्वरूपमिति । यह सूर्य सर्वरूपवाला है, और इसका नाम जातवेदस भी है, क्योंकि सम्पूर्ण जगत् के लोक इसी के आश्रय रहते हैं, इसीसे सबको ज्ञान उत्पन्न होता है, और सम्पूर्ण इन्द्रियोंका आश्रय-

भूत यही है, यह प्रकाशरूप है, एक है द्वैत से रहित है, यह बाहर भीतर प्रवेश करके सम्पूर्ण जगत् को तपानेवाला है, यह अपनी असंख्य किरणों करके नाना प्राणियों में स्थित है, और सम्पूर्ण स्थावर जङ्गम प्रजा का प्राणरूप भी है, और उदय होकर सम्पूर्ण प्राणियों के व्यवहारों का उनके चक्षु इन्द्रिय को शक्ति देकर करानेवाला है, बुद्धिमान् लोक इसको ऐसाही कहते हैं ॥ ८ ॥

मूलम् ।

संवत्सरो वै प्रजापतिस्तस्यायने दक्षिणं चोत्तरं च तद्ये ह वै तदिष्टापूर्ते कृतमित्युपासते ते चान्द्रमसमेव लोकमभिजयन्ते त एव पुनरावर्तन्ते तस्मादेत ऋषयः प्रजाकामा दक्षिणं प्रतिपद्यन्ते एष ह वै रयिर्यः पितृयाणः ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ।

संवत्सरः, वै, प्रजापतिः, तस्य, अयने, दक्षिणम्, च, उत्तरम्, च, तत्, ये, ह, वै, तत्, इष्टापूर्ते, कृतम्, इति, उपासते, ते, चान्द्रमसम्, एव, लोकम्, अभिजयन्ते, ते, एव, पुनः, आवर्तन्ते, तस्मात्, एते, ऋषयः, प्रजाकामाः, दक्षिणम्, प्रतिपद्यन्ते, एषः, ह, वै, रयिः, यः, पितृयाणः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
संवत्सरः	काल	इष्टापूर्त्त	यज्ञदान आदि
वै	ही	ह वै	निश्चयकरके
प्रजापतिः	प्रजापति है	तत् कृतम्	मुख्य कर्म हैं
दक्षिणम्	दक्षिण	इति	ऐसा
च	और	+ ज्ञात्वा	जानकर
उत्तरम्	उत्तर	ये	जो ब्राह्मणादि
तस्य	उसके	तत्	तम् = उस संवत्सर प्रजापति की
+ च	निश्चयकरके	उपासते	उपासना करते हैं
अयने	दो मार्ग हैं		

ते=वे
चान्द्रमसम्=चन्द्रमासम्बन्धी
लोकम्=लोकों को
एव=निःसन्देह
अभिजयन्ते=जीतते हैं याने पहुँचते हैं
+ च=और
ते=वे
एव=अवश्य
पुनरावर्त्तन्ते=कर्म क्षय होने पर जन्म मरणभाव को प्राप्त होते हैं
तस्मात्=इसी कारण

प्रजाकामाः=संतानकी इच्छा करनेवाले गृहस्थी पुरुष
+ च=और
ऋषयः=स्वर्ग की कामनावाले ऋषि
एते=ये सब
दक्षिणम्=पुनरावृत्ति मार्ग को
प्रतिपद्यन्ते=प्राप्त होते हैं
+ च=और
यः=जो
ह वै=निश्चयकरके
एषः=यह
पितृयाणः=दक्षिणमार्ग है
+ सः एव=सोई
रयिः=रयिचन्द्ररूप है

भावार्थ ।

संवत्सरः । सूर्यही काल है और कालही प्रजापति है, और प्रजापतिही संवत्सर है, तिस संवत्सर के दो मार्ग हैं, एक तो छः महीने का दक्षिणायन मार्ग है, दूसरा छः महीने का उत्तरायण मार्ग है, जब सूर्य्य दक्षिण की तरफ जाता है तब दक्षिणायन कहाता है, जब उत्तरकी तरफ जाता है तब उत्तरायण कहा जाता है, दोनों मार्गों से एक ही संवत्सर का स्वरूप सिद्ध होता है, जो कर्मी इष्टापूर्त्तकर्मों को अर्थात् श्रौत और स्मार्त कर्मों को करते हैं, वे चन्द्रलोकसंवन्धी भोगों को अर्थात् चन्द्रलोकरूपी स्वर्ग में उत्तम भोगों को भोग करके फिर इसी लोक में लौट आते हैं, उन लोकों को प्रजा की कामनावाले कर्मी दक्षिणायन मार्ग से ही जाते हैं, यही पितृमार्ग भी कहाजाता है, स्वर्गादि भोग्य रयिरूप है ॥ ६ ॥

मूलम् ।

अथोत्तरेण तपसा ब्रह्मचर्य्येण श्रद्धया विद्ययाऽऽत्मानमन्विष्यादित्यमभिजायन्ते एतद्वै प्राणानामायतनमेतदमृतमभयमेतत् परायणमेतस्मान्न पुनरावर्त्तन्त इत्येष निरोधस्तदेष श्लोकः ॥ १० ॥

पदच्छेदः ।

अथ, उत्तरेण, तपसा, ब्रह्मचर्य्येण, श्रद्धया, विद्यया, आत्मानम्, अन्विष्य, आदित्यम्, अभिजायन्ते, एतत्, वै, प्राणानाम्, आयतनम्, एतत्, अमृतम्, अभयम्, एतत्, परायणम्, एतस्मात्, न, पुनः, आवर्त्तन्ते, इति, एषः, निरोधः, तत्, एषः, श्लोकः ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	पक्षांतरविषे याने दूसरे पक्ष उत्तर मार्ग विषे
ये	जो उपासक
तपसा	तप करके
ब्रह्मचर्येण	ब्रह्मचर्य करके
श्रद्धया	आस्तिक्य बुद्धि करके
विद्यया	विद्या करके
आत्मानम्	आत्मा को
अन्विष्य	अन्वेषण करके
आदित्यम्	आदित्यलोक को
अभिजायन्ते	प्राप्त होते हैं
+ ते	वे
पुनः	फिर
न आवर्त्तन्ते	जन्म मरणभाव को नहीं पाते हैं
हि	क्योंकि
एतत् वै	यह आदित्यही
प्राणानाम्	सब प्राणियों का
आयतनम्	आश्रय है
एतत्	यह
एव	ही
अमृतम्	मोक्षपदार्थ है
एतत् एव	यह ही
अभयम्	निर्भय स्वरूप है
+ अतएव	यह ही
परायणम्	परम आश्रय है
इति एषः	ऐसा यह उत्तर मार्ग
+ कर्मिणाम्	कर्मियों को
निरोधः	प्राप्य है
तत्	तत्र=इस संवत्सर प्रजापति विषे
एषः	यह अगला
श्लोकः	मन्त्र भी प्रमाण है

भावार्थ ।

अथेति । चन्द्रलोक की प्राप्ति दक्षिणायन मार्ग करके कही गई है अब उत्तरायण मार्ग करके सूर्य्यलोक की प्राप्ति को कहते हैं ॥ अथोत्तरेण ॥ जिन साधनों करके उत्तरायण मार्ग से उपासक सूर्य्यलोक को प्राप्त होते हैं उन्हीं को अब कहते हैं ॥ शरीर का सुखानेवाला जो तप है व इन्द्रियों का दमन करनेवाला जो ब्रह्मचर्य्य है और गुरु और वेद वाक्यों में आस्तिक बुद्धि करानेवाली जो श्रद्धा है इन सब करके आत्मा का अन्वेषण करता हुआ सूर्य का उपासक सूर्यलोक को प्राप्त होता है और जन्म मरणाभाव से रहित होजाता है, क्योंकि वह सूर्य की अहंग्रे उपासना करके सूर्यरूप ही होजाता है, प्राणशब्द का वाच्य जो चक्षुरादि इन्द्रिय हैं, उनका आश्रय सूर्य्यही है, वह सूर्य अविनाशी वृद्धिक्षय से रहित है, यही सूर्य्यउपासकों की प्राप्ति का आश्रय है, और उत्तरायण मार्ग से प्राप्त होने के योग्य भी है, इस उत्तरायण मार्ग से जो उपासक गमन करता है वह फिर लौट कर इस लोक में नहीं आता है, इस उत्तरायणमार्ग को कर्मी करके नहीं जासक्ते हैं, इसी अर्थ को आगेवाला मंत्र भी कहता है ॥ १० ॥

मूलम् ।

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्द्धे पुरीपिणम्
अथेमे अन्य उ परे विचक्षणं सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितमिति ॥११॥

पदच्छेदः ।

पञ्चपादम्, पितरम्, द्वादशाकृतिम्, दिवः, आहुः, परे, अर्द्धे, पुरीषिणम्, अथ, इमे, अन्ये, उ, परे, विचक्षणम्, सप्तचक्रे, षडरे, आहुः, अर्पितम्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
पञ्चपादम्=	हेमन्त और शिशिरको एक समझके पांच ऋतुरूपी चरण हैं जिसके
पितरम्=	सब का जनक याने उत्पन्न करनेवाला है जो
द्वादशाकृतिम्=	द्वादश अवयव हैं जिसके
दिवः=	अन्तरिक्ष के
परे अर्द्धे=	उत्तरार्द्ध विषे
पुरीषिणम्=	जलवान् स्थित है जो
तम्=	उसको
+सूर्य संवत्सरम्=	सूर्यरूप संवत्सर
इति=	ऐसा
+ कालवेत्तारः=	काल के वेत्तालोक
आहुः=	कहते हैं
अथ उ=	और
यः=	जो
परे=	उत्कृष्ट
षडरे=	षट्ऋतुरूपी अरावाले
सप्तचक्रे=	सप्ताश्वरथचक्र विषे
अर्पितम्=	अर्पित है
तम्=	उसको
विचक्षणम्=	ज्ञानात्मक
सूर्यम्=	सूर्यरूपी संवत्सर
इति=	ऐसा
इमे अन्ये=	और लोक
+ आहुः=	कहते हैं

भावार्थ ।

पंचपादेति । प्र० ॥ आदित्यरूपी संवत्सर कैसा है ॥ उ० ॥ यह पांच पादवाला है याने पांच ऋतुवाला है । लोक में षट्ऋतु प्रसिद्ध हैं, परन्तु यहां पर हेमंत और शिशिर दोनों को एक करके माना है इसी कारण संवत्सर को हेमंत, वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, पांच ऋतुवाला माना है, आदित्यरूपी संवत्सर इन्हीं करके एक पांच पादवाला कहा जाता है वही संवत्सर वृष्टि अन्नादि द्वारा संपूर्ण जगत् का जनक है और चैत से लेकर के बारह महीने हैं, येही उस संवत्सर के बारह अंग हैं, और अंतरिक्ष लोकसे भी उसका स्थान ऊपर है, वही जलवाला भी है, ऐसा कालके वेत्ता पुरुष कहते हैं, और कोई बुद्धिमान् काल के वेत्ता ऐसा भी कहते हैं कि सूर्यरूपी संवत्सर के रथ में सात

घोड़ेरूपी लोक सहित ६ ऋतु हैं, वे सदाही चला करते हैं, कभी ठहरते नहीं हैं, सात जो घोड़े हैं वेही सात प्रकार के आदित्यरूपी संवत्सर के सात शक्ति हैं, वे अरे होकर उसके पहियेरूपी लोकों के चलानेवाले हैं, याने लोक उनहीं के आश्रय हैं, तात्पर्य इसके कहने का यह है कि कालही सूर्य चन्द्र होकर सम्पूर्ण सृष्टि का कर्ता है ॥ ११ ॥

मूलम् ।

मासो वै प्रजापतिस्तस्य कृष्णपक्ष एव रयिः शुक्लः प्राणस्तस्मादेत ऋषयः शुक्ल इष्टिं कुर्वन्ति इतर इतरस्मिन् ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ।

मासः, वै, प्रजापतिः, तस्य, कृष्णपक्षः, एव, रयिः, शुक्लः, प्राणः, तस्मात्, एते, ऋषयः, शुक्ले, इष्टिम्, कुर्वन्ति, इतरे, इतरस्मिन् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
मासः	मास	एते	ये
वै	ही	ऋषयः	उत्तरमार्गके उपासक ऋषि
प्रजापतिः	प्रजापति है	शुक्ले	शुक्लपक्ष विषे
तस्य	तिस मास का	इष्टिम्	यज्ञ को
कृष्णपक्षः	कृष्णपक्ष	कुर्वन्ति	करते हैं
एव	ही	+ च	और
रयिः	चन्द्र है	इतरे	दक्षिणमार्ग के उपासक
+ च	और	इतरस्मिन्	कृष्णपक्ष विषे यज्ञ करते हैं
शुक्लः	शुक्लपक्ष		
प्राणः	सूर्य है		
तस्मात्	इसी लिये		

भावार्थ ।

मासो वै । पन्द्रह दिनका कृष्णपक्ष होता है, और पन्द्रह दिनका शुक्लपक्ष होता है, दोनों पक्षों का एक मास होता है, वह दो पक्षवाला

मास प्रजापतिरूपही है तिस प्रजापति का शुक्लपक्ष सूर्य है और कृष्णपक्ष चन्द्रमा है, जो कृष्णपक्ष है वही रयि है, और जो शुक्ल पक्ष है सोई प्राण है जो बुद्धिमान् उपासक सूर्य को ही सर्वरूप करके प्राणही जानते हैं, वे प्राणही को सर्वरूप करके देखते हैं प्राण से भिन्न कोई वस्तु उनको नहीं दिखाई देती है प्राण को सर्व वस्तु से श्रेष्ठमान् हैं इसीलिये प्राणरूपी शुक्लपक्ष में ही इष्टपूर्त्त कर्मों को करते हैं, कृष्णपक्ष में नहीं और जो उत्तरलोक हैं वे शुक्लपक्ष में इष्टपूर्त्त कर्मों को करते भी हैं तब भी वह कृष्ण ही पक्षका अनुभव करते हैं क्योंकि प्राणों की उपासना से रहित जो हैं वे इस विभाग को नहीं जानते हैं और इसीलिये वे कृष्णपक्ष में इष्टपूर्त्त कर्मों को करते हैं और यदि शुक्लपक्ष में जो करदेते हैं तब भी उनको कृष्ण पक्षका ही फल मिलता है ॥ १२ ॥

मूलम् ।

अहोरात्रो वै प्रजापतिस्तस्याहरेव प्राणो रात्रिरेवरयिः प्राणं वा एते प्रस्कन्दन्ति ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते ब्रह्मचर्यमेव तद्यद्रात्रौ रत्या संयुज्यन्ते ॥ १३ ॥

पदच्छेदः ।

अहोरात्रः, वै, प्रजापतिः, तस्य, अहः, एव, प्राणः, रात्रिः, एव, रयिः, प्राणम्, वै, एते, प्रस्कन्दन्ति, ये, दिवा, रत्या, संयुज्यन्ते, ब्रह्मचर्यम्, एव, तत्, यत्, रात्रौ, रत्या, संयुज्यन्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अहोरात्रः	दिन और रात	अहः	दिन
वै	निश्चय करके	एव	ही
प्रजापतिः	प्रजापति है	प्राणः	सूर्य है
तस्य	उस प्रजापति का	+ च	और

रात्रिः=रात
एव=ही
रयिः=चन्द्रमा है
वै=इसलिये
ये=जो लोक
दिवा=दिन में
रत्या=स्त्री से
संयुज्यन्ते=संयुक्त होते हैं याने भोग करते हैं
एते=वे मूर्ख
+ वै=निश्चय करके
प्राणम्=तेजरूप अपने प्राण को
प्रस्कन्दन्ति=त्यागते हैं
+ च=और
यत्=जो
रात्रौ=रात्री विषे
रत्या=भोग के वास्ते स्त्री से
संयुज्यन्ते=संयुक्त होते हैं
+ तेषाम्=उनको
तत्=यह कर्म
एव=निश्चय करके
ब्रह्मचर्यम्=ब्रह्मचर्य है

भावार्थ ।

अहोरात्र इति । तीस घड़ी का एक दिन होता है और तीसही घड़ी की रात्री होती है साठ घड़ी का दिनरात्र दोनों होते हैं सो दिन रात्र भी प्रजापतिरूपही है, तीस घड़ी प्रमाणवाला जो दिन है वह आदित्य है, याने सूर्य्य है और तीस घड़ी प्रमाणवाली जो रात्री है, वह चन्द्रमा है इसलिये दिनमें स्त्री के साथ भोग करने का निषेध किया है जो लोग दिन में मैथुन करते हैं, वे अपने प्राणों को नाश करते हैं, याने प्राणों को सुखाते हैं, जो पुरुष दिन में स्त्री के साथ क्रीड़ा नहीं करते हैं, परन्तु रात्री में ही करते हैं, उन का जो रात्री में मैथुन करना है, वह ब्रह्मचर्य ही है, इसलिये रात्री में ही अपनी स्त्री के साथ पुरुष भोग करें, परस्त्री को किसी काल में भी भोग न करें ॥ १३ ॥

मूलम् ।

अन्नं वै प्रजापतिस्ततो ह वै तद्रेतस्तस्मादिमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ॥ १४ ॥

पदच्छेदः ।

अन्नम्, वै, प्रजापतिः, ततः, ह, वै, तत्, रेतः, तस्मात्, इमाः, प्रजाः, प्रजायन्ते, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अन्नम्=अन्न		रेतः=वीर्य्य	
वै=ही		जायते=उत्पन्न होता है	
प्रजापतिः=प्रजापति है		तस्मात्=उसी वीर्य से	
ततः=उस अन्नरूप प्रजापति से		इति=दृश्यमान	
ह वै=निश्चय करके		इमाः प्रजाः=ये संपूर्ण प्रजा	
तत्=वह प्रजोत्पादन समर्थ		जायन्ते=उत्पन्न होती हैं	

भावार्थ ।

अन्नमिति । पूर्ववाले मंत्रों में जो कुछ कहा है सो सब उपयोगी जान करके कहागया है ॥ और जो यह प्रश्न किया गया था कि सब प्रजा किस से उत्पन्न होती हैं सो अब उसके उत्तर को कहते हैं ॥ अन्नं वै प्रजापतिः ॥ यह जो प्रसिद्ध व्रीहि यवादिरूप अन्न है यही प्रजापति है अर्थात् दिन मास संवत्सररूप जो काल है तद्रूपही यह अन्न भी है तिसी अन्नके भक्षण करने से वीर्य्य उत्पन्न होता है तिसी वीर्य्य से नानाप्रकार के प्राणियों के शरीर उत्पन्न होते हैं ॥ १४ ॥

मूलम् ।

तद्ये ह वै तत्प्रजापतिव्रतं चरन्ति ते मिथुनमुत्पादयन्ते तेषामेवैष ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, ये, ह, वै, तत्, प्रजापतिव्रतम्, चरन्ति, ते, मिथुनम्, उत्पादयन्ते, तेषाम्, एव, एषः, ब्रह्मलोकः, येषाम्, तपः, ब्रह्मचर्य्यम्, येषु, सत्यम्, प्रतिष्ठितम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
तत्	इसलिये
ये	जो गृहस्थी लोक
ह वै	निश्चय करके
तत्प्रजापतिव्रतम्	ऋतुकाल विषे भार्यागमनरूप व्रतको
चरन्ति	करते हैं
ते	वे
मिथुनम्	पुत्रपुत्रीरूप मिथुन याने जोड़े को
उत्पादयन्ते	उत्पन्न करते हैं
+ तेषाम् एतत् दृष्टफलम्	उनका यह दृष्ट फल है
च	और
येषाम्	जिनका
तपः	स्नातकव्रत आदि तप है
च	और

अन्वयः	पदार्थ
ब्रह्मचर्यम्	ऋतुकाल विषे भार्या गमनादि नियम
यथोक्तमस्ति	विधिपूर्वक है
च	और
येषु	जिनके विषे
सत्यम्	सत्य
प्रतिष्ठितम्	सदा स्थित है
तेषाम् एव	उन्हींका
एषः	यह पूर्वोक्त
ब्रह्मलोकः	दक्षिण मार्गरूप चंद्रलोक
भवति	कर्मफल भोग पर्यंत होता है
तेषाम् एतत् अदृष्टफलम्	उनका यह अदृष्ट फल है

भावार्थ ।

तद्येहेति । प्रश्न के उत्तर को कहकर शास्त्र विहित मैथुन के दृष्ट फल को दिखाते हैं ॥ तत् ॥ इस संसारमंडल में जो गृहस्थाश्रम वाले पूर्वोक्त प्रजापति के व्रत को आचरण करते हैं अर्थात् दिन में मैथुन का त्याग करके ऋतुकाल में स्वभार्या से गमन करते हैं वे पुत्र और कन्या के जोड़े को उत्पन्न करते हैं अब उसी प्रजापति व्रत के अदृष्टफल को कहते हैं ॥ उन्हीं को ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है जिन्हों ने स्नातक व्रतादि तपको ऋतुकाल विषे स्वभार्या गमनरूपी ब्रह्मचर्य्य को, और सत्यभाषण को स्वीकार किया है ॥ १५ ॥

मूलम् ।

तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृतं न माया चेति ॥१६॥

पदच्छेदः ।

तेषाम्, असौ, विरजः, ब्रह्मलोकः, न, येषु, जिह्मम्, अनृतम्, न, माया, च, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
च=और		असौ=यह पूर्वोक्त	
येषु=जिन पुरुषों विषे		विरजः=रोगादि दोषों से रहित	
जिह्मम्=कुटिलता		ब्रह्मलोकः=उत्तरायण मार्गरूपी सूर्यलोक	
न=नहीं है		+ भवति=प्राप्त होता है	
च=और		इति=प्रथम प्रश्न की समाप्ति है	
अनृतम्=असत्यता			
न=नहीं है			
तेषाम्=उन पुरुषों को			

भावार्थ ।

तेषामिति । पूर्वके मंत्रमें केवल कर्मियों को चन्द्रलोक की प्राप्ति कही है, अब इस मंत्र में ज्ञान के सहित कर्मियों को जो फल प्राप्त होता है उसको कहते हैं ॥ तेषामिति ॥ जिन उपासकों में कुटिलता, असत्य भाषणता, और छल प्रपञ्चता भीतर बाहर से नहीं है, और हिंसा, चोरी, आदि दुष्टकर्म नहीं है, उन निष्काम कर्मियों को उत्तरायण मार्ग करके वृद्धि क्षयरहित ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है ॥ १६ ॥

इति प्रथमः प्रश्नः ॥ १ ॥

मूलम् ।

अथ हैनं भार्गवो वैदर्भिः पप्रच्छ भगवन् कत्येव देवाः प्रजां विधारयन्ते कतर एतत् प्रकाशयन्ते कः पुनरेषां वरिष्ठ इति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, एनम्, भार्गवः, वैदर्भिः, पप्रच्छ, भगवन्, कति, एव,

देवाः, प्रजाम्, विधारयन्ते, कतरे, एतत्, प्रकाशयन्ते, कः, पुनः, एषाम्, वरिष्ठः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ ह	इसके पीछे	एनाम्	इस
वैदर्भिः	विदर्भ देश का रहने वाला	प्रजाम्	शरीर को
भार्गवः	भार्गवऋषि	विधारयन्ते	धारण करते हैं
एनम्	उस पिप्पलाद मुनि से	+ च	और
इति	ऐसा	कतरे	कौनसे देवता
पप्रच्छ	पूछता भया कि	एतत्	इस शरीर को
भगवन्	हे भगवन्	प्रकाशयन्ते	प्रकाश करते हैं
कति	कितने	पुनः	और
देवाः	देवता याने आकाशादि पंचमहाभूत चक्षुरादि पंचज्ञानेन्द्रिय वागादि पांच कर्मेन्द्रिय मन और प्राण जो देवता करके प्रसिद्ध हैं उनमें से कितने देवता	एषाम्	इनमें से
		कः	कौन
		वरिष्ठः	श्रेष्ठ
		+ अस्ति	है

भावार्थ ।

अथ हैनमिति । अब पिप्पलाद मुनि से भृगुकुल में उत्पन्न हुआ जो वैदर्भि नामवाला ऋषि है सो पूछता है हे भगवन् ! जो देवता प्राणियों के शरीरों को धारण कररहे हैं वे सब देवता कितने हैं, अर्थात् जो ज्ञानेन्द्रियों में, कर्मेन्द्रियों में, प्राणों में, मनादिकों में स्थित होकर शरीर को धारण करते हैं और प्रकाश भी करते हैं वे देवता सब कितने हैं, और इन देवतों के बीच में श्रेष्ठ देवता कै हैं सो मेरे प्रति कहिये ॥ १ ॥

मूलम् ।

तस्मै स होवाचाकाशो ह वा एष देवो वायुरग्निरापः पृथिवी वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रं च ते प्रकाश्याभिवदन्ति वयमेतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तस्मै, सः, ह, उवाच, आकाशः, ह, वा, एषः, देवः, वायुः, अग्निः, आपः, पृथिवी, वाक्, मनः, चक्षुः, श्रोत्रम्, च, ते, प्रकाश्य, अभिवदन्ति, वयम्, एतत्, बाणम्, अवष्टभ्य, विधारयामः ॥

अन्वयः	पदार्थ
तस्मै	उस भार्गव मुनि से
सः	वह पिप्पलाद
हः	स्पष्ट
उवाच	कहता भया कि
एषः	यह
आकाशः	आकाश
हवा	प्रसिद्ध
देवः	देवता है
वायुः	वायु
+ देवः	देवता है
अग्निः	अग्नि
+ देवः	देवता है
पृथिवी	पृथिवी
+ देवः	देवता है
वाक्	वाक्
+ देवता	देवता है
मनः	मन
देवता	देवता है
चक्षुः	चक्षु
देवता	देवता है
श्रोत्रम्	श्रोत्र
+ देवता	देवता है
+ तेषाम्	उन में से
ते	वे याने पांच कर्मेन्द्रियां और पांच ज्ञानेन्द्रियां
+ स्वमाहात्म्यम्	अपने माहात्म्य को
प्रकाश्य	प्रकाश करके
अभिवदन्ति	परस्पर कहते भये कि
वयम्	हम
एतत्	इस
बाणम्	शरीर को
अवष्टभ्य	स्थित करके
विधारयामः	धारण करते हैं

नोट—वाक् उपलक्षण करके पांच कर्मेन्द्रिय देवता हैं, मन उपलक्षण करके वृत्तिचतुष्टय अन्तःकरण देवता हैं, चक्षु और श्रोत्र उपलक्षण करके पांच ज्ञानेन्द्रिय देवता हैं ॥

भावार्थ ।

तस्मै स होति । वैदर्भि ने जब ऐसा प्रश्न किया तब पिप्पलाद ऋषि उससे कहते भये ॥ आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी ये पांच महा भूतरूप देवता हैं, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ ये पांच कर्मेन्द्रिय-रूपी देवता हैं, चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, रसना, त्वक् ये पांच ज्ञानेन्द्रिय-रूपी देवता हैं, और मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार ये चार अन्तःकरण के वृत्तिरूपी देवता हैं, ये सब शरीर में स्थित होकर अपने २ कार्य को करते हैं और शरीर को प्रकाशते हैं, एक समय ये पूर्वोक्त सब देवता परस्पर अभिमान को करते भये और हरएक उनमें से कहता भया कि हमहीं श्रेष्ठ हैं, हमने ही इस शरीर को दृढ़ करके धारण कर रक्खा, अगर हम न हों, तो तुम सब नाश हो जाओ, हमारी ही स्थिति से तुम्हारी सबकी स्थिति है ॥ २ ॥

मूलम् ।

तान् वरिष्ठः प्राण उवाच मा मोहमापद्यथाऽहमेवैतत् पंचधात्मानं प्रविभज्यैतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामीति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

तान्, वरिष्ठः, प्राणः, उवाच, मा, मोहम्, आपद्यथ, अहम्, एव, एतत्, पञ्चधा, आत्मानम्, प्रविभज्य, एतत्, बाणम्, अवष्टभ्य, विधारयामि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तान्	उन सब से	मा	मत
वरिष्ठः	श्रेष्ठ	मोहम्	अज्ञान को
प्राणः	प्राण देवता	आपद्यथ	प्राप्त हो
उवाच	कहता भया कि	अहम्	मैं
+ यूयम्	तुम सब	एव	ही

एतत्=इस
आत्मानम्=अपने आपको
पञ्चधा=पांच प्रकार से
प्रविभज्य= { विभाग करके याने अपानादि भेदसे पांच प्रकार का होकर

एतत्=इस
बाणम्=शरीर को
अवष्टभ्य=स्थिर करके
विधारयामि=भली प्रकार धारण करता हूँ

भावार्थ ।

तानिति । तब उन सब अभिमानी देवताओं से प्राण हाथ उठाकर कहने लगा, तुम सब कोई अज्ञान को मत प्राप्त हो, मैं ही इस शरीर में मुख्य हूं, मैं ही पांच रूप धारण करके याने प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान, होकर इस शरीर को स्थित कर रक्खा हूं, और नाना प्रकार के कार्य्यों के करने में मैंने ही इसको सामर्थ्यवाला बना रक्खा हूं ॥ ३ ॥

मूलम् ।

तेऽश्रद्दधाना बभूवुः सोऽभिमानादूर्ध्वमुत्क्रामत इव तस्मिन्नुत्क्रामत्यथेतरे सर्व एवोत्क्रामन्ते तस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने सर्व एव प्रतिष्ठन्ते तद्यथा मक्षिका मधुकरराजानमुत्क्रामन्तं सर्वा एवोत्क्रामन्ते तस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने सर्वा एव प्रतिष्ठन्त एवं वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रं च ते प्रीताः प्राणं स्तुन्वन्ति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

ते, अश्रद्दधानाः, बभूवुः, सः, अभिमानात्, ऊर्ध्वम्, उत्क्रामते, इव, तस्मिन्, उत्क्रामति, अथ, इतरे, सर्वे, एव, उत्क्रामन्ते, तस्मिन्, च, प्रतिष्ठमाने, सर्वे, एव, प्रतिष्ठन्ते, तत्, यथा, मक्षिकाः, मधुकरराजानम्, उत्क्रामन्तम्, सर्वाः, एव, उत्क्रामन्ते, तस्मिन्, च, प्रतिष्ठमाने, सर्वाः, एव, प्रतिष्ठन्ते, एवम्, वाक्, मनः, चक्षुः, श्रोत्रम्, च, ते, प्रीताः, प्राणम्, स्तुन्वन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ तस्मिन्	इस कहनेपर
ते	वे मन आदि
अश्रद्धानाः	अविश्वासमान
बभूवुः	होतेभये
+ तदा	तब
सः	वह प्राण उन के अविश्वासको जान के
अभिमानात्	अहंकार से उन को त्याग करके
ऊर्ध्वम्	ऊर्ध्व को
उत्क्रामते इव	उत्क्रमण सा करता भया
तस्मिन्	उस प्राण के
उत्क्रामति	उत्क्रमण करने पर
इतरे	चक्षुरादि
सर्वे	सब
एव	ही
उत्क्रामन्ते	उत्क्रमण करते भये
च	और
तस्मिन्	उस प्राण के
प्रतिष्ठमाने	स्थित होने पर
सर्वे	सब
एव	ही चक्षुरादि देवता
प्रतिष्ठन्ते	सम्यक् प्रकार स्थित होते भये
तद्यथा	जैसे

अन्वयः	पदार्थ
उत्क्रामन्तम्	उड़ते हुये
मधुकरराजानम्	मधुकरों के राजा के साथ
सर्वाः	सब
एव	ही
मक्षिकाः	मधुकर मक्षिका
उत्क्रामन्ते	उड़जाती हैं
च	और
तस्मिन्	मधुकर राजा के
प्रतिष्ठमाने	स्थितहोने पर
सर्वाः	सब
एव	ही
मक्षिकाः	मधुकर मक्षिका
प्रतिष्ठन्ते	स्थित होजाती हैं
एवम्	ऐसे ही
वाक्	वाणी
मनः	मन
चक्षुः	चक्षु
च	और
श्रोत्रम्	श्रोत्र सब
ते	ये प्राण के माहात्म्यको जान कर और अपने अविश्वास को छोड़कर
प्रीताः	प्रसन्न होती हुई
प्राणम्	प्राण को
स्तुन्वन्ति	स्तुति करती हैं

नोट—जब सब इन्द्रियां प्राण की श्रेष्ठताको जानती भई तब आपुस में एक दूसरे से प्राणके माहात्म्य को अगले दो मन्त्रों में कह कर उसके सम्मुख होकर उसकी स्तुति करने लगीं ॥

भावार्थ ।

तेऽश्रद्धानेति । वे जो श्रोत्रादिक देवता थे सो प्राण के वाक्य पर श्रद्धा न करके आस्तिक बुद्धि से रहित होकर हँसने लगे, जब प्राण ने देखा कि अभिमानी देवता मेरी हँसी करते हैं तब उनके अभिमान को दूर करने के लिये शरीर से बाहर निकलने की तैयारी की, उसके निकलते ही श्रोत्रादिक जितने देवता शरीर में थे सब कंपायमान होकर व्याकुल हुये और उसके पीछे २ चलनेलगे, जब प्राण वापिस आया, तब वे सब फिर उसके साथ ही शरीर में वापिस आये, जिस काल में शरीर से प्राण उत्क्रमण करता है उसी काल में इतर सब देवता उत्क्रमण कर जाते हैं, और जिस काल शरीर में प्राण स्थिर होजाता है उसी काल सब देवता भी स्थिर होजाते हैं, शरीर में सब देवतोंकी स्थिति प्राण केही आधीन है, स्वतंत्र कोई भी देवता नहीं है, इसी में अब दृष्टांतको कहते हैं, जैसे मधुको इकट्ठा करनेवाली सब मक्षिका अपने राजाके आधीन रहती हैं अर्थात् जिस काल में मधु के छत्ते को त्यागकर मधुमक्षिका का राजा उड़जाता है, तब सब मक्षिका भी उसके पीछे उड़जाती हैं फिर जब वह आकर मधुके छत्ते पर बैठ जाता है, तब सब मक्षिका भी तिसके साथही बैठजाती हैं, इसी तरह प्राण के उत्क्रमण करने के समय सब इन्द्रियां भी उसके साथ ही उत्क्रमण करजाती हैं, सब इन्द्रियां प्राण के ही आधीन हैं, जिस काल में प्राण शरीर से उत्क्रमण करने की तैयारी करता है, उसी काल में सब इन्द्रियां व्याकुल होकर उसके साथ गमन करने लगती हैं, जब सब इन्द्रियां प्राणकी श्रेष्ठता को जानती भईं तब सब आपुस में उसके महत्त्वको कहने लगीं ॥ ४ ॥

मूलम् ।

एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्य्य एष पर्जन्यो मघवानेष वायुरेष पृथिवी रयिर्देवः सदसच्चामृतं च यत् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

एषः, अग्निः, तपति, एषः, सूर्य्यः, एषः, पर्जन्यः, मघवान्, एषः, वायुः, एषः, पृथिवी, रयिः, देवः, सत्, असत्, च, अमृतं, च, यत् ॥

अन्वयः	पदार्थ
एषः	यही प्राण
अग्निः	अग्नि होके
तपति	तपता है
एषः	यही प्राण
सूर्यः	सूर्य होके प्रकाश करता है
एषः	यही प्राण
पर्जन्यः	मेघ होके वर्षा करता है
एषः	यही प्राण
मघवान्	इन्द्र होके प्रजाका पालन करता है और राक्षसोंको मारता है
एषः	यही
वायुः	आवह प्रवहादि रूपहो के ब्रह्मांड को धारणकरता है
+ एषः	यही प्राण
पृथिवी	पृथिवीरूप होके अन्नादि औषधी से प्राणियों का पालन करता है
+ एषः	यही प्राण
रयिः	चन्द्रमा
देवः	देव होके विश्व का पोषण करता है
+ एषः	यही प्राण
सत्	स्थूल
+ च	और
असत्	सूक्ष्मरूप सब जगत् है
च	और
+ एषः	यही प्राण
अमृतं च	अमृतरूप भी है

नोट—आवह वह वायु है जिस करके मेघ चलते हैं और बरसते हैं ॥ प्रवह वह वायु है जिस करके सूर्य चन्द्र आदि नक्षत्र तारागण चलते हैं ऐसेही पांच प्रकारके और वायु ब्रह्मांड के धारण करने वाले हैं ॥

भावार्थ ।

एष इति । यह प्राणही अग्निरूप होकर संसार को तपाता है,

यही सूर्य्यरूप होकर जगत् को प्रकाश करता है, यही मेघरूप होकर वर्षा करता है, यही इन्द्ररूप होकर प्रजाकी पालना करता है, और वायुरूप होकर ब्रह्मांडको धारण करता है, यही पृथिवीरूप होकर अन्नादि औषधि से प्राणियों का पालन करता है, यही चन्द्रमा होकर विश्वको पोषण करता है, यही प्रकाशमान है, यही स्थूल और सूक्ष्म-रूप सब जगत् है, और देवतों के जीवनका हेतुभूत यही अमृत है ॥५॥

मूलम् ।

अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितं ऋचो यजूंषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्म च ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

अराः, इव, रथनाभौ, प्राणे, सर्वम्, प्रतिष्ठितम्, ऋचः, यजूंषि, सामानि, यज्ञः, क्षत्रम्, ब्रह्म, च ॥

अन्वयः	पदार्थ
इव	जैसे
रथनाभौ	रथचक्रपिंड का विषय
अराः	आरा स्थित हैं
+ तथा	तैसेही
प्राणे	प्राण विषे
सर्वम्	श्रद्धादि नामपर्यंत सब शरीर षोडश कलावाला जिसका व्याख्यान षष्ठ प्रश्न चतुर्थ मंत्र विषे है
प्रतिष्ठितम्	स्थित है
च	और
ऋचः	ऋक्
यजूंषि	यजु
सामानि	साम ये तीन प्रकार के वेद
+ च	और
यज्ञः	इन वेदों से प्रतिपाद यज्ञ
+ च	और
क्षत्रम्	क्षत्रियजाति
ब्रह्म	ब्राह्मण जाति ये सब प्राण विषे स्थित हैं

नोट—सब इन्द्रियां अलग आपुस में ऊपर कहे प्रकार विचारकर प्राण के सम्मुख हो उसकी स्तुति करती हैं ॥

भावार्थ ।

अरा इवेति । जैसे रथचक्रपिंडके विषे अरा लगे रहते हैं तैसेही संसाररूपी चक्र में नाभिरूपी जो प्राण है उसमें अरावत् सूर्य, चन्द्र, तारागण आदि लोक, ऋक्, यजु, साम आदि वेद, पृथिवी और इन वेदोंसे प्रतिपाद्य यज्ञ, और श्रद्धा आदि साधन, और ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि जाति लगे हैं, अर्थात् जो कुछ माया और मायाका कार्य्य है, वह सब प्राणही में अर्पित है, प्राणके बाहर कोई वस्तु नहीं, सब प्राणहीरूप है ॥ ६ ॥

मूलम् ।

प्रजापतिश्चरसि गर्भे त्वमेव प्रतिजायसे तुभ्यं प्राणः प्रजास्त्विमा बलिं हरन्ति यः प्राणैः प्रतिष्ठसि ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

प्रजापतिः, चरसि, गर्भे, त्वम्, एव, प्रतिजायसे, तुभ्यम्, प्राणः, प्रजाः, तु, इमाः, बलिम्, हरन्ति, यः, प्राणैः, प्रतिष्ठसि ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
प्राण=	हे प्राण	प्रतिजायसे=	प्रति शरीर विषे मातृ पितृ आदि रूप से उत्पन्न होता है
त्वम्=	तू	तु=	और
प्रजापतिः=	विराट्रूप हुआ	यः=	जो तू
गर्भे=	प्राणियों के गर्भ विषे	प्राणैः=	चक्षुरादि प्राणों के साथ
चरसि=	व्याप्त है		
त्वम् एव=	तू ही		

नोट-१ जिसमें पादों का संकेत हो उन मंत्रों का नाम ऋचा है जिसमें पादों का नियम न हो उन मंत्रों का नाम यजु है. जो गायनकी तरह पढ़ा जावे उन मंत्रों का नाम साम है

प्रतिष्ठासि=सम्यक् प्रकार स्थित है
+ एतदर्थम्=इसलिये
इमाः प्रजाः=ये चक्षुरादि सब प्रजा
तुभ्यम्=तेरे अर्थ
बलिम्=भागको
हरन्ति=प्राप्त करते हैं

भावार्थ ।

प्रजापतिरिति । इन्द्रियादिक देवता प्राणों की स्तुति करते हैं, हे प्राण ! विराट्रूप तू ही है, तू ही पिता के शरीर में वीर्य्यरूप होकर माता के गर्भ में स्थित होता है तू ही माताके गर्भ से पुत्ररूप होकर बाहर निकलता है, तू ही प्रजापतिरूप है, और जितने चक्षुरादि इन्द्रियां हैं सब तेरे लिये ही बलीभाग को देती हैं क्योंकि तू उन सब के साथ होकर सर्वशरीर में पांचरूप से स्थित है ॥ ७ ॥

मूलम् ।

देवानामसि वह्नितमः पितॄणां प्रथमा स्वधा ऋपीणां चरितं सत्यमथर्वाङ्गिरसामसि ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

देवानाम्, असि, वह्नितमः, पितॄणाम्, प्रथमा, स्वधा, ऋषीणाम्, चरितम्, सत्यम्, अथर्वाङ्गिरसाम्, असि ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ त्वम्	तू ही
देवानाम्	इन्द्रादि देवताओं का
वह्नितमः	श्रेष्ठ अग्निरूप याने यज्ञ भागका सम्यक्प्रकार प्राप्त करनेवाला
+ असि	है
+ च	और
+ त्वम्	तू ही
पितॄणाम्	पितरों का
प्रथमा	प्रथम
स्वधा	भाग प्राप्त करने वाला नांदीश्राद्ध विषे
+ असि	है
+ च	और
+ त्वम्	तू ही
अथर्वांगिरसाम्	देहधारण करनेवाले
ऋषीणाम्	चक्षुरादि देवताओं का
सत्यम्	सत्य
चरितम्	चैतन्य
असि	है

नोट—स्वाहा शब्द देवतों के निमित्त यज्ञ भागका प्राप्त करनेवाला है, याने स्वाहा शब्द करके हवनादि कर्म किये जाते हैं, अर्थात् हवनादिकों विषे स्वाहा शब्द उच्चारण करके देवतों के निमित्त वलि दी जाती है ॥ स्वधा ॥ यज्ञ या श्राद्धविषे पितरों के निमित्त जो भाग दिया जाता है सो "स्वधा" शब्द करके दिया जाता है— ॥ अथर्वांगिरसाम् ॥ अथर्वा = प्राण, आंगिरसाम् = अंगविषे रसरूप है जो, याने शरीर विषे मुख्यतत्त्व है जो, सोई प्राण है ॥

भावार्थ ।

देवानामिति । जितने इन्द्रादिक देवता हैं उन सबको अग्निरूप हो कर तू ही वलि भाग को पहुंचाता है, और पितर लोकमें निवास करनेवाले जितने पितर हैं, उनके प्रति भी तू ही स्वधा शब्द द्वारा हवि को पहुंचाता है अर्थात्—देवतों और पितरों के प्रति जो अन्नादि दिया जाता है वह अन्नरूप भी तू ही है और जो इन्द्रियों, शरीरों के धारण करने की सामर्थ्य है वह भी तू ही है ॥ ८ ॥

मूलम् ।

इन्द्रस्त्वं प्राणतेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्य्यस्त्वं ज्योतिषाम्पतिः ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ।

इन्द्रः, त्वम्, प्राणतेजसा, रुद्रः, असि, परिरक्षिता, त्वम्, अन्तरिक्षे, चरसि, सूर्य्यः, त्वम्, ज्योतिषाम्पतिः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
प्राण=हे प्राण		तेजसा=पराक्रम करके	
त्वम्=तू ही		रुद्रः=जगत् संहारकारक रुद्ररूप	
इन्द्रः=परमेश्वर		त्वम् असि=तू ही है	
असि=है			

+ च=और
त्वम्=तू ही
परिरक्षिता=सब प्रकार रक्षक है
+ च=और
+ त्वम्=तू ही
सूर्यः=सूर्यरूप होके
अन्तरिक्षे=आकाशविषे
चरसि=निरंतर चलता है
+ च=और
+ त्वम्=तू ही
ज्योतिषा-म्पतिः = { अग्नि आदिदेवतों का भी ईश्वर है

भावार्थ ।

इन्द्रस्त्वमिति । हे प्राण ! परमेश्वर तू ही है, और रुद्ररूप होकर अपने बल से सम्पूर्ण जगत् का नाश करनेवाला तू ही है, और जगत् की स्थितिकालमें रक्षा करनेवाला भी तू ही है, और तू ही सूर्यरूप होकर आकाश में विचरता है, और सम्पूर्ण तारों को अपने तेज से प्रकाशमान करता है, और तू ही अग्नि आदिकों का ईश्वर है ॥ ९ ॥

मूलम् ।

यदा त्वमभिवर्षस्यथेमाः प्राणते प्रजा आनन्दरूपास्तिष्ठन्ति कामायान्नं भविष्यतीति ॥ १० ॥

पदच्छेदः ।

यदा, त्वम्, अभिवर्षसि, अथ, इमाः, प्राणते, प्रजाः, आनन्दरूपाः, तिष्ठन्ति, कामाय, अन्नम्, भविष्यति, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यदा	जब	+ च	और
त्वम्	तू	कामाय	आगे को प्रशस्त
अभिवर्षसि	मेघ होके वर्षा करता है	अन्नम्	अन्न
अथ	तब	भविष्यति	होगा
इमाः	ये	इति	ऐसा विचार कर
प्रजाः	प्रजा	आनन्दरूपाः	आनंदरूप होती हुई
प्राणते	प्राणों की चेष्टा को करती हैं	तिष्ठन्ति	स्थित होती हैं

भावार्थ ।

यदेति । हे प्राण ! जिस काल में तू मेघरूप होकर वर्षा को करता है, तिस काल में ये सम्पूर्ण प्रजा जीवनशक्ति की चेष्टा को करती हैं, और आनन्द को प्राप्त होती हैं, क्योंकि उस काल में सम्पूर्ण प्रजाको यह निश्चय होता है कि अब तू हमारी इच्छा की पूर्ति करेगा और हमारे भोगके लिये वर्षा द्वारा बहुतसा अन्न उत्पन्न करेगा ॥ १० ॥

मूलम् ।

व्रात्यस्त्वं प्राणैक ऋषिरत्ता विश्वस्य सत्पतिः वयमाद्यस्य दातारः पिता त्वं मातरिश्वनः ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ।

व्रात्यः, त्वम्, प्राण, एकः, ऋषिः, अत्ता, विश्वस्य, सत्पतिः, वयम्, आद्यस्य, दातारः, पिता, त्वम्, मातरिश्वनः ॥

अन्वयः	पदार्थ
प्राण	हे प्राण
त्वम्	तू
व्रात्यः	संस्कार विना स्वभाव से ही शुद्ध है क्योंकि प्रथम होने से तेरा पिता कोई नहीं है
+ त्वम्	तू ही
एकर्षिः	एकर्षिनामक मुख्य अग्नि है
त्वम्	तू ही
अत्ता	सब हविर्द्रव्यों का भोक्ता है
+ त्वम्	तू ही
विश्वस्यसत्पतिः	सब विद्यमान जगत्का उत्तम पति है
च	और
वयम्	हम सब इन्द्रियां
आद्यस्य	तेरे अर्थ भोग्य-वस्तुको
दातारः	प्राप्त करनेवाले हैं
त्वम्	तू
मातरिश्वनः	हमारा
पिता	पिता है

भावार्थ ।

व्रात्यस्त्वमिति । जिसका यज्ञोपवीत संस्कार न हुआ हो उसका नाम व्रात्य है हे प्राण ! वह व्रात्यरूप तू ही है, क्योंकि स्वभाव से ही शुद्ध है, और प्रथम तू ही उत्पन्न हुआ है, तेरा पिता कोई नहीं है हे प्राण ! एकर्षिनामक जो अग्नि है, वह तू ही है, तू ही सब हविर्द्रव्यों का भोक्ता है, तू ही चराचर जगत् का भोक्ता, और संहार करता है और जितने व्रीहियवादिक अन्न हैं, उन सबको उत्पन्न करनेवाला तू ही है, और हम जितने श्रोत्रादिक देवता हैं, उन सबको भोग देनेवाला तू ही है, हम सब देवतों को उत्पन्न करनेवाला पिता भी तू ही है, और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को धारण करनेवाला वायु तू ही है, तू सब विद्यमान जगत् का उत्तम पति है, हम सब इन्द्रियां तेरे अर्थ भोग्यवस्तु को प्राप्त करनेवाले हैं, हे प्राण ! तू हमलोकों का पिता है ॥ ११ ॥

मूलम् ।

या ते तनूर्वाचि प्रतिष्ठिता या श्रोत्रे या च चक्षुषि या च मनसि सन्तता शिवां तां कुरु मोत्क्रमीः ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ।

या, ते, तनूः, वाचि, प्रतिष्ठिता, या, श्रोत्रे, या, च, चक्षुषि, या, च, मनसि, सन्तता, शिवाम्, ताम्, कुरु, मा, उत्क्रमीः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
या=जो		मूर्त्तिः=मूर्त्ति	
ते=तेरी		श्रोत्रे=कर्ण विषे स्थित है	
तनूः=मूर्त्ति		च=और	
वाचि=वाणी विषे		या=जो	
प्रतिष्ठिता=स्थित है		मूर्त्तिः=मूर्त्ति	
च=और		चक्षुषि=नेत्रविषे स्थित है	
या=जो		+ च=और	

या=जो मूर्ति	शिवाम्=कल्याणवती मूर्ति को
मनसि=मन विषे	कुरु=धारण कर
सन्तता=व्याप्त हैं	मा उत्क्रमीः=उत्क्रमण मत कर
ताम्=तिस	

भावार्थ ।

या ते तनूरिति । हे प्राण ! जो तेरी यह प्रसिद्ध अपानरूपी मूर्ति है सो वागिन्द्रिय में स्थित होकर बोलने के व्यापार को करती है, और जो व्यानरूपी तेरी मूर्ति है सो श्रोत्रेन्द्रिय में स्थित होकर शब्द के सुननारूपी व्यापारको करती है और जो प्राणरूपी तेरी मूर्ति है वह मुख और नासिका द्वारा वाहर भीतर गमनरूपी व्यवहार को करती है और जो तेरी मूर्ति चक्षु इन्द्रिय में स्थित है वह देखनेरूपी व्यापार को करती है और जो तेरी मूर्ति मन में स्थित है वह संकल्पादि व्यापार को करती है, हे प्राण ! तू इस शरीर से उत्क्रमण मत कर, हम सबोंपर दया करके हमारे कल्याण के लिये इसी शरीर में स्थित रह ॥ १२ ॥

मूलम् ।

प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत्प्रतिष्ठितं मातेव पुत्रान् रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञाञ्च विधेहि न इति ॥ १३ ॥

पदच्छेदः ।

प्राणस्य, इदम्, वशे, सर्वम्, त्रिदिवे, यत्, प्रतिष्ठितम्, माता, इव, पुत्रान्, रक्षस्व, श्रीः, च, प्रज्ञाम्, च, विधेहि, नः, इति ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
इदम्=यह दृश्यमान	वशे=वश में है
सर्वम्=सब उपभोग	च=और
+तव=तुझ	त्रिदिवे=स्वर्गविषे
प्राणस्य=प्राण के	यत्प्रतिष्ठितम्=जो देवभोग्य है

+तदपि तव वशे=सो भी तेरे वश में है
+अतः=इसलिये
पुत्रान्=हम पुत्रों को
माता इव=माता के समान
रक्षस्व=तू रक्षा कर
च=और
श्रीः=भगलक्ष्मियों को
+च=और
प्रज्ञाम्=अपने प्रजापतित्व ज्ञान योग्य बुद्धि को
नः=हमारे लिये
विधेहि=विधान कर
इति=ऐसे प्राण की स्तुति करके मन आदि इन्द्रियां तूष्णीं होती भईं

भावार्थ ।

प्राणस्येति । हे प्राण ! यावत् जो कुछ जगत् दिखाई पड़ता है उसको हमलोक तेरी ही कृपा से विषय करते हैं, और जो कुछ संसार में है हे प्राण ! सब तेरे ही वस में है, हे प्राण ! तू हम पुत्रों की माता की तरह रक्षा कर, अनर्थों से वचा, और हमको कल्याणकारक जो कि बुद्धि है उसको दे, स्वर्गविषे जो देवभोग है वह सब तेरे आधीन है, इसप्रकार प्राणकी स्तुति करके मनादि इन्द्रियां तूष्णीं होती भईं ॥ १३ ॥

इति द्वितीयः प्रश्नः ॥ २ ॥

मूलम् ।

अथ हैनं कौशल्यश्चाश्वलायनः पप्रच्छ भगवन् कुत एष प्राणो जायते कथमायात्यस्मिञ्छरीर आत्मानं वा प्रविभज्य कथं प्रातिष्ठते केनोत्क्रमते कथं वाह्यमभिधत्ते कथमध्यात्ममिति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, एनम्, कौशल्यः, च, आश्वलायनः, पप्रच्छ, भगवन्, कुतः, एषः, प्राणः, जायते, कथम्, आयाति, अस्मिन्, शरीरे, आत्मानम्, वा, प्रविभज्य, कथम्, प्रातिष्ठते, केन, उत्क्रमते, कथम्, वाह्यम्, अभिधत्ते, कथम्, अध्यात्मम्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ ह च	तदनंतर
एतम्	इस पिप्पलाद आचार्य से
आश्वलायनः	अश्वल मुनि का पुत्र
कौशल्यः	कौशल्यनामक ऋषि
इति	ऐसा
पप्रच्छ	पूछता भया कि
भगवन्	हे भगवन्
एषः	यह
प्राणः	प्राण
कुतः	किस कारण करके
जायते	उत्पन्न होता है
कथम्	किस प्रकार
+ अस्मिन्	इस
+ शरीरे	देह विषे
आयाति	आगमन करता है
वा	पुनः

अन्वयः	पदार्थ
कथम्	किस प्रकार
अस्मिन्	इस
शरीरे	शरीर में
आत्मानम्	अपने आपको
प्रविभज्य	अपानादि पांच विभाग करके
प्रातिष्ठते	स्थित रहता है
केन	किस वृत्तिविशेष करके
उत्क्रामते	उत्क्रमण इस शरीर से करता है
कथम्	कैसे
बाह्यम्	अधिभूत अधिदैवको
+ च	और
कथम्	कैसे
अध्यात्मम्	अध्यात्मको
अभिधत्ते	धारण करता है

भावार्थ ।

अथेति । जब प्रथम प्रश्न के उत्तर को पिप्पलाद ऋषि ने समाप्त किया तत्पश्चात् आश्वलायन का पुत्र कौशलनामक ऋषि पूछता भया हे भगवन् ! किस उपादान और निमित्त कारण से यह प्राण उत्पन्न होता है, किस प्रकार करके इस स्थूल शरीर में आजाता है, किस निमित्त से शरीर को ग्रहण करता है और किस तरह से यह प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान भेद करके शरीर में स्थिर होकर शरीर को धारण करता है, और फिर शरीर के किस द्वारसे मरते समय उत्क्रमण कर जाता है, और किस प्रकार करके बाहर के आधिभूत

और आधिदैव को अर्थात् पञ्च महाभूतों को और उनके अभिमानी देवताओं को अथवा इस वर्तमान देह और इन्द्रियों को धारण करता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

तस्मै स होवाचातिप्रश्नान् पृच्छसि ब्रह्मिष्ठोऽसि इति तस्मात्तेऽहम् ब्रवीमि ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तस्मै, सः, ह, उवाच, अतिप्रश्नान्, पृच्छसि, ब्रह्मिष्ठः, असि, इति, तस्मात्, ते, अहम्, ब्रवीमि ॥

अन्वयः	पदार्थ
तस्मै	तिस कौशल्य ऋषि के प्रति
ह	निश्चय करके
सः	वह पिप्पलाद मुनि
उवाच	कहता भया कि
त्वम्	तू
अतिप्रश्नान्	अति प्रश्नों को
पृच्छसि	पूछता है
+ परंतु	परंतु
+ त्वम्	तू
ब्रह्मिष्ठः	ब्रह्मविषे श्रद्धावान्
असि	है
तस्मात्	इसलिये
इति	ऐसा जानकर
अहम्	मैं
ते	तेरेप्रति
ब्रवीमि	कहता हूं

भावार्थ ।

तस्मा इति । तब पिप्पलाद आचार्य्य ने उस कौशल्यऋषि से कहा कि तुम अति प्रश्नों को पूछते हो जो शास्त्रमें मना है परन्तु तुम ब्रह्मिष्ठ हो अर्थात् वेद के अर्थ के ज्ञाता हो, उत्तम अधिकारी हो, तुम्हारे प्रति हम इन प्रश्नों के उत्तर को कहते हैं, सावधान होकर श्रवण करो ॥ २ ॥

मूलम् ।

आत्मन एव प्राणो जायते यथैषा पुरुषे छायैतस्मिन्नेतदाततम्मनोकृतेनायात्यस्मिञ्छरीरे ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

आत्मनः, एव, प्राणः, जायते, यथा, एषा, पुरुषे, छाया, एतस्मिन्, एतत्, आततम्, मनोकृतेन, आयाति, अस्मिन्, शरीरे ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
आत्मनः	परमात्मा से	एतत्	यह प्राणतत्त्व
एव	ही	आततम्	समर्पित है
प्राणः	प्राण	+ च	और
जायते	उत्पन्न होता है	अस्मिन्	इस
यथा	जैसे	शरीरे	शरीर विषे
पुरुषे	पुरुष विषे	+ प्राणः	प्राण
एषा	यह दृश्यमान	मनोकृतेन	मनके संकल्पकृत कर्म के वश से
छाया	प्रतिबिंब है	आयाति	प्रवेश करता है
+ तथा	तैसे		
एतस्मिन्	इस परमात्मा विषे		

भावार्थ ।

आत्मन इति । यह जो प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान पञ्च वृत्तिरूप प्राण है सो अक्षय परमात्मा से उत्पन्न होता है, और उसी के आश्रय रहता है, उससे इसकी पृथक् सत्ता नहीं है, जैसे लोक में पुरुष के शरीर से उत्पन्न हुई जो छाया है वह वास्तवमें सत्य नहीं है और न शरीर से अलग है, प्राणों का कारणीभूत जो ब्रह्मात्मा है उसी में आरोपित है, वास्तव में यह नहीं है और जैसे प्रतिबिम्ब की बिम्ब से अपनी पृथक् सत्ता कोई नहीं है तैसे प्राण की भी आत्मा से पृथक् सत्ता अपनी नहीं है, परमात्मा के ही आश्रित है और मनके

सङ्कल्पादिकों से उत्पन्न हुआ जो कर्म है उसी कर्म के निमित्त करके इस स्थूल शरीर में प्राण प्रवेश करता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

यथा सम्राडेवाधिकृतान् विनियुङ्क्ते एतान् ग्रामानेतान् ग्रामान-धितिष्ठस्वेति एवमेवैष प्राण इतरान् प्राणान् पृथक् पृथगेव सन्निधत्ते ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

यथा, सम्राट्, एव, अधिकृतान्, विनियुङ्क्ते, एतान्, ग्रामान्, एतान्, ग्रामान्, अधितिष्ठस्व, इति, एवम्, एव, एषः, प्राणः, इतरान्, प्राणान्, पृथक्, पृथक्, एव, सन्निधत्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यथा	जैसे	एवम् एव	वैसे ही
सम्राट्	राजा	एषः	यह
अधिकृतान्	अधिकारी लोकों को याने अपने नौकरों को	प्राणः	प्राण
इति	ऐसा	इतरान्	अपने से पृथक्
विनियुंक्ते	आज्ञा देता है कि	प्राणान्	चक्षुरादि इंद्रियों को और अपानादि वायुको
+ त्वम्	तुम	पृथक्	अलग
एतान्	इन	पृथक्	अलग
ग्रामान्	ग्रामों में	एव	निश्चय करके
एतान् ग्रामान्	इन ग्रामोंमें	सन्निधत्ते	कर्म विषे नियोग याने प्रेरणा करता है
अधितिष्ठस्व	स्थित होकर स्वकार्य में तत्पर हो		

भावार्थ ।

यथेति । जिस प्रकार राजा अपने अधिकारी भृत्यों को आज्ञा देता है कि तुम कुरुक्षेत्र देश आदि में जाकर बन्दोबस्त करो, उन देशों का मैंने तुमको हाकिम किया है, इसी प्रकार यह मुख्य प्राण भी अपने से भिन्न चक्षुरादि इन्द्रियों को भी और अपान आदि वायु को

इस शरीर के पृथक् २ स्थानों में रखकर उन को कर्मविषे नियोग करता है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

पायूपस्थेऽपानम् चक्षुः श्रोत्रे मुखनासिकाभ्याम् प्राणः स्वयम् प्रातिष्ठते मध्ये तु समानः एषो ह्येतद्धुतमन्नं समन्नयति तस्मादेताः सप्तार्चिषो भवन्ति ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

पायूपस्थे, अपानम्, चक्षुः, श्रोत्रे, मुखनासिकाभ्याम्, प्राणः, स्वयम्, प्रातिष्ठते, मध्ये, तु, समानः, एषः, हि, एतत्, हुतम्, अन्नम्, समन्नयति, तस्मात्, एताः, सप्तार्चिषः, भवन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ
पायूपस्थे	पुरीष मूत्र मोचन स्थान विषे
अपानम्	अपानवायुको
+ स्थापयति	स्थापित करता है
चक्षुःश्रोत्रे	नेत्र और कर्ण विषे
मुखनासिकाभ्याम्	मुख और नासिका विषे
प्राणः	प्राण
स्वयम्	आपही
प्रातिष्ठते	स्थित होता है
तु	और
मध्ये	प्राण अपान के मध्यनाभि विषे
समानः	समान वायुरूप से स्थित होता है
हि	प्रसिद्ध
एषः	यह समान वायु
हुतम्	भुक्त
अन्नम्	अन्नपान को
समन्नयति	यथायोग्यस्थानों में प्राप्त करता है
तस्मात्	इसी कारण उदर अग्नि से प्राणद्वारा
एताः	ये चक्षुरादि
सप्तार्चिषः	सात ज्योतिःस्वरूप मस्तक गतज्ञानेंद्रियां
भवन्ति	रूपादि के ग्रहण करने में समर्थ होती हैं

नोट—मुखनासिकाभ्याम् चतुर्थी विभक्ति है परन्तु अर्थ सप्तमी विभक्ति का इस मन्त्र विषे देता है ॥

भावार्थ ।

पायूपस्थ इति । गुदा और शिश्न इन्द्रिय में यह प्राण अपान वायु होकर स्थित होताहै, और मल और मूत्र को बाहर निकालता है, चक्षु, श्रोत्र, मुख, और नासिका में प्राण आपही स्थित होकर गमनाऽगमन क्रियाको किया करता है, शरीर का मध्य देश जो नाभि है उसमें समान रूप से यह प्राण स्थित होता है, और भक्षण किये हुये अन्न के रसको नाडियों में विभाग करके बांटता है, और इसी कारण दो श्रोत्र, दो नासिका, दो नेत्र, एक मुख ये सात अग्नि की लाटें कही जाती हैं, और अन्नादि के भोगने में और रूपादि के ग्रहण करने में समर्थ होती हैं ॥ ५ ॥

मूलम् ।

हृदि ह्येष आत्माऽत्रैतदेकशतं नाडीनां तासां शतं शतमेकैकस्यां द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाडीसहस्राणि भवन्त्यासु व्यानश्चरति ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

हृदि, हि, एषः, आत्मा, अत्र, एतत्, एकशतम्, नाडीनाम्, तासाम्, शतम्, शतम्, एकैकस्याम्, द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः, प्रतिशाखानाडीसहस्राणि, भवन्ति, आसु, व्यानः, चरति ॥

अन्वयः	पदार्थ
एषः	यह प्रसिद्ध
आत्मा	जीवात्मा
हि	निश्चय करके
हृदि	हृदयाकाश विषे स्थित है
अत्र	तिस हृदय विषे
एतत्	यह
एकशतम्	एकसौ एक प्रधान नाड़ी हैं
तासाम्	उन
नाडीनाम्	नाड़ियों में से
एकैकस्याम्	एक एकनाड़ी विषे
शतं शतम्	सौ सौ नाड़ी के विस्तार से

द्वासप्ततिर्द्वा-सप्ततिः = वहत्तर वहत्तर हजार
प्रतिशाखा नाडीसहस्राणि = प्रतिशाखा नाड़ियां
भवन्ति=होती हैं
आसु=इन नाड़ियों विषे
व्यानः=व्यानवायु
चरति=संचार करता है

नोट—प्रथम हृदयाकाश विषे १०१ मुख नाड़ी हैं, तिन नाड़ियों में से हरएक नाड़ी से सौ सौ नाड़ी निकली हैं, इसलिये एकसौ एकको सौके साथ गुणा करने से दशहजार एकसौ १०१०० नाड़ी हुई, फिर तिन एकहजार एकसौ नाड़ियों में से हरएक नाड़ी में से ७२००० वहत्तर वहत्तर हजार नाड़ी निकली हैं, तिन वहत्तर हजार को दशहजार एकसौ के साथ गुणा करने से ७२७२००००० वहत्तरकरोड़ वहत्तरलाख नाड़ीहुई, तिन में १०१ और १०१०० जोड़ने से कुल ७२७२१०२०१ नाड़ी हुई ॥

भावार्थ ।

हृदीति । अब नाड़ियों के उत्पत्ति के स्थानको कहते हैं ॥ हृदि ॥ हृदय कमल में यह जीवआत्मा प्राण रहता है, इसी हृदयदेश से एकसौ एक १०१ प्रधान नाड़ियें निकसी हैं, उन एकसौ एक नाड़ियों में से हरएक नाड़ी से एक २ सौ नाड़ियों की शाखायें निकसी हैं, और सब नाड़ी शाखाओं की संख्या एक ऊपर दश हजार होती है, इन नाड़ियों में से हरएक नाड़ी से वहत्तरहजार ७२००० नाड़ियें निकसी हैं, यदि एकसौ ऊपर दशहजार १०१०० नाड़ियों को वहत्तरहजार ७२००० से जो गुणा किया जाय तब वहत्तरकरोड़ और वहत्तरलक्ष सब नाड़ी हुई ७२७२००००० होती हैं इन में यदि १०१ प्रधान नाड़ी और १०१०० शाखा नाड़ी जोड़ी जायँ तो ७२७२१०२०१ होती हैं कोई आचार्य्य ऐसा कहते हैं कि एकही नाड़ी सब नाड़ियों का मूलभूत सुषुम्ना नामवाली नाड़ी हृदय से निकसी है, और उसी से शाखावत् दश नाड़ियें निकसी हैं उन दश नाड़ियों में से हर एक नाड़ी से नव

नव ६० नाड़ियें निकसी हैं, और दश शाखावाली नाड़ी को उनकी नब्बे प्रति शाखा नाड़ियों के साथ मिला देने से एकसौ नाड़ी होती हैं, और इन एकसौ नाड़ियों में से हर एक नाड़ी से एक २ सौ नाड़ी और निकसी हैं, तब इनका सब जोड़ दशहजार एकसौ एक नाड़ी हुईं, फिर उन्हीं के मध्य में से हर एक नाड़ी से बहत्तर २ हजार नाड़ी निकसी हैं अगर उनको दश हजार के साथ गुणा किया जाय तब बहत्तरकरोड़ नाड़ी होती हैं, इनके साथ दशहजार एकसौ एक नाड़ी के मिलाने से सब बहत्तरकरोड़ दशहजार एकसौ एक नाड़ी होती हैं ७२००१०१०१ इन्हीं सूक्ष्म नाड़ियों में प्राण व्यान वायु होकर गमन करता है इन्हीं सूक्ष्म नाड़ियों में व्याप्त होकर सब शरीर के सूक्ष्म व स्थूल अवयवों में घूमता है ॥ ६ ॥

मूलम् ।

अथैकयोर्ध्व उदानः पुण्येन पुण्यं लोकं नयति पापेन पापमुभाभ्यामेव मनुष्यलोकम् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, एकया, ऊर्ध्वः, उदानः, पुण्येन, पुण्यम्, लोकम्, नयति, पापेन, पापम्, उभाभ्याम्, एव, मनुष्यलोकम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब पिप्पलाद मुनि कहते हैं कि
एकया	एक सुषुम्णा नाड़ीद्वारा
ऊर्ध्वः	ऊर्ध्व को उत्क्रान्त हुआ
उदानः	उदानवायु
+ देहिनम्	जीव को
पुण्येन	पुण्यकर्म से
पुण्यम् लोकम्	पुण्यलोक को
+ च	और
पापेन	पापकर्म से
पापम्	नरकादिलोकको
+ च	और
उभाभ्याम्	पुण्य पाप मिश्रित कर्म से
मनुष्यलोकम्	मनुष्यलोकको
एव	निश्चय करके
नयति	प्राप्त करता है

भावार्थ ।

अथेति । अब उदान वायु के स्थान और उसके उत्क्रमण को कहते हैं ॥ अथेति ॥ यद्यपि उदान वायु सब नाड़ियों में विचरता है, तथापि एक सुषुम्णा नाड़ी के मार्ग से ही ऊर्ध्वलोकों में शरीर छूटते समय लिंगशरीर संयुक्त जीव को लेकरके जाता है, पुण्यकर्मोंवाले को पवित्र देवादि योनियों में प्राप्त करता है, और पापकर्मोंवाले को पाप-योनियों में याने पशु या नरकादिकों में लेजाकर प्राप्त करता है, और मिश्रित कर्म्म के करनेवालों को मनुष्ययोनि को प्राप्त करता है ॥ ७ ॥

मूलम् ।

आदित्यो ह वै बाह्यः प्राण उदयत्येष ह्येनं चाक्षुषं प्राणमनुगृह्णानः पृथिव्यां या देवता सैषा पुरुषस्यापानमवष्टभ्यान्तरा यदाकाशः स समानो वायुर्व्यानः ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

आदित्यः, ह, वै, बाह्यः, प्राणः, उदयति, एषः, हि, एनम्, चाक्षुषम्, प्राणम्, अनुगृह्णानः, पृथिव्याम्, या, देवता, सा, एषा, पुरुषस्य, अपानम्, अवष्टभ्य, अन्तरा, यत्, आकाशः, सः, समानः, वायुः, व्यानः ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ यः	जो
ह वै	प्रसिद्ध
आदित्यः	सूर्य
हि	निश्चय करके
एनम्	इस
चाक्षुषम्	चक्षु विषे स्थित
प्राणम्	प्राण को
अनुगृह्णानः	अनुगृहीत करता हुआ अर्थात् रूप के ग्रहण करने में समर्थ करता हुआ
उदयति	उदय को प्राप्त होता है
+ सः	सोई

एषः=यह
बाह्यः=बाह्य
प्राणः=प्राण है
+ तथा=तैसेही
पृथिव्याम्=पृथिवी विषे अभिमानी
या=जो
देवता=अग्निरूप प्राण है
सा=सोई
एषा=यह
पुरुषस्य=पुरुष के
अपानम्=अपान वायु को नीचे के तर्फ
अवष्टभ्य=आकर्षण करके
+ स्थिता=स्थित है
+ च=और
यत्=जो
अन्तरा=मध्य विषे
आकाशः=आकाशरूप
समानः=समान
वायुः=वायु है
+ सः=सोई व्यष्टि अन्तर समान वायु पर अनुग्रह करता है
+ च=और
यत=जो बाह्य समष्टि व्यान वायु ब्रह्म लोक से पाताल लोक पर्यन्त
व्यानः=व्याप्त है
+ सः=सोई अन्तर व्यष्टि वायु पर अनुग्रह करता हुआ बरतता है

नोट—जो सूर्यरूप समष्टि प्राण वायु है सोई व्यष्टिरूप प्राण वायु होकर प्राणियों के चक्षु विषे स्थित है, जो अग्निरूप समष्टि प्राणवायु पृथिवी विषे स्थित है, सोई व्यष्टिरूप अपानवायु होकर प्राणियों के नीचे के भाग विषे स्थित है, जो समष्टि प्राणवायु अन्तरिक्षलोक विषे याने स्वर्ग और पृथिवी के मध्यभाग विषे जो आकाश है तिस विषे जो समष्टि प्राणवायु स्थित है सोई व्यष्टिरूप समानवायु होकर प्राणियों के मध्यभाग विषे स्थित है, और जो समष्टि प्राणवायु बाहर ब्रह्मलोक से लेकर पाताललोक पर्यन्त व्याप्त है सोई व्यष्टिरूप व्यानवायु होकर सम्पूर्ण प्राणियों के अन्तर नख शिख पर्यन्त स्थित है, इसीलिये समष्टि प्राणवायु के सहायता विना व्यष्टि प्राणवायु जो प्राणियों के शरीर विषे स्थित है नहीं रह सक्ता है ॥

भावार्थ ।

आदित्य इति । सूर्यमण्डल अभिमानी जो पुरुषरूपी बाह्य मुख्य प्राण है वह उदय होता हुआ जीवों के चक्षु विषे जो प्राण है उसपर अपने प्रकाश से अनुग्रह करता हुआ उन चक्षुवों को रूप के ग्रहण करने में सामर्थ्य करता है, और पृथिवी अभिमानी जो प्राण देवता है वह पुरुषों के स्थूल शरीर के अपान वायु को अपनी तरफ खैंचता है और उसपर अनुग्रह करता है और इसी कारण यह शरीर स्थित रहता है, यदि वह पृथिवी में रहनेवाला प्राणवायु जीवों के अपानवायु पर अनुग्रह न करै तो शरीर भारी होकर गिर पड़े याने रुकावट के कारण ऊर्ध्व को प्राणवायु के बल से उड़जाय सूर्य व पृथ्वी के बीच में जो आकाश है उसमें जो प्राणवायु स्थित है वह जीवों के शरीरों के मध्यविषे समान वायु की सहायता करता है और जो बाहर की प्रसिद्ध प्राणवायु है सोई जीवों के व्यानवायु की सहायता करता है तात्पर्य इसका यह है कि यदि बाह्य प्राणवायु जीवों के अभ्यन्तरी प्राणवायु की सहायता न करै तो उनके शरीर स्थित नहीं रहसक्ते हैं ॥ ८ ॥

मूलम् ।

तेजो ह वै उदानस्तस्मादुपशान्ततेजाः पुनर्भवमिन्द्रियैर्मनसि संपद्यमानैः ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ।

तेजः, ह, वै, उदानः, तस्मात्, उपशान्ततेजाः, पुनर्भवम्, इन्द्रियैः, मनसि, सम्पद्यमानैः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ह वै	निश्चयकरके, उत्क्रान्तिधर्मवाला	तस्मात्	इसलिये
उदानः	उदानवायु	+ तस्य + उत्क्रान्तौ	उसके निकलने पर
तेजः	तेजस्वरूप है		

उपशान्ततेजाः={ मरण निकटको प्राप्त हुआ पुरुष याने जीव	सम्पद्यमानैः=प्रवेश करते हुये
	इन्द्रियैः=इन्द्रियों के संग
मनसि=मनकी भावना विषे	पुनर्भवम्=शरीरान्तरको प्राप्त होता है

भावार्थ ।

तेजो ह वै इति । दाह और प्रकाशको करनेवाली जो प्रसिद्ध तेजरूपी समष्टि वाह्यवायु है याने सब पदार्थों को अंश देनेवाली जो वायु है वह जीवोंके व्यष्टि उदानवायु पर अनुग्रह करता है और इसीकारण वे तेजस्वी प्रतीत होते हैं याने जीते रहते हैं, जब पुरुष के शरीर में तेज उच्छिन्न हो जाता है, तब वह इस शरीर को त्याग करके शरीरान्तर को प्राप्त होता है, शरीर के त्यागकाल में प्रथम इन्द्रियगण अन्तःकरणमें प्रवेश कर जाती हैं तत्पश्चात् जीव, इन्द्रियां और मन आदिकों के सहित शरीरान्तर को प्राप्त होजाता है ॥ ९ ॥

मूलम् ।

यच्चित्तस्तेनैष प्राणमायाति प्राणस्तेजसा युक्तः सहात्मना यथा संकल्पितं लोकं नयति ॥ १० ॥

पदच्छेदः ।

यच्चित्तः, तेन, एषः, प्राणम्, आयाति, प्राणः, तेजसा, युक्तः, सह, आत्मना, यथा, सङ्कल्पितम्, लोकम्, नयति ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
यच्चितः=मरण समय पुरुष का जैसा चित्त होता है	तेजसा=उदान वायु से
तेन=उस चित्त करके	युक्तः=युक्त होताहुआ
एषः=यह जीव	आत्मना सह=अपने साथ
प्राणम्=प्राण को	+ जीवम्=जीवको
आयाति=प्राप्त होता है	यथासंकल्पितम्=उसके संकल्पके अनुसार
+ च=और	लोकम्=योनिको
प्राणः=प्राण	नयति=प्राप्त करता है

भावार्थ ।

यच्चित्त इति । कर्मों के अनुसार मरणकाल में इस जीव का चित्त जिस जिस देवता मनुष्य पशु आदिक योनियों की ओर जाता है उसी उसी योनि में वह अभिमानी जीव सहित इन्द्रिय देवताओं के और मन आदि अन्तःकरण के जाकर उत्पन्न होता है, मरण काल में मुख प्राण तेजरूपी उदानवायु से संयुक्त होकर भोक्ता जीव को उसके कर्मजन्य संकल्प के अनुसार कर्म्मफल भोगाने को लोकलोकान्तर देह-देहान्तर में लेजाता है ॥ १० ॥

मूलम् ।

य एवं विद्वान् प्राणं वेद न हास्य प्रजा हीयतेऽमृतो भवति तदेष श्लोकः ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ।

यः, एवम्, विद्वान्, प्राणम्, वेद, न, ह, अस्य, प्रजा, हीयते, अमृतः, भवति, तत्, एषः, श्लोकः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	जो	न	नहीं
एवम्	इस प्रकार	हीयते	हीन होती है
विद्वान्	बुद्धिमान् पुरुष	+ च	और
प्राणम्	प्राण को	+ सः	वह
वेद	जानता है	अमृतः	अमर
अस्य	उस प्राण उपासक की	भवति	होता है
प्रजा	संतति	तत्	इस बिषे
ह	इस लोक बिषे	एषः	यह आगेवाला
		श्लोकः	मंत्र प्रमाण है

भावार्थ ।

य इति । प्राण के स्वरूप को कथन करके अब प्राण की उपासना को कथन करते हैं ॥ य इति ॥ जो विद्वान् पुरुष पूर्वोक्त प्रकार करके

प्राणों को जानता है तिस प्राणोपासक विद्वान् की सन्तति कदापि नष्ट नहीं होती है और शरीर के पात होने पर वह अमरभाव को प्राप्त होता है, इसी अर्थ को आगेवाला मन्त्र भी कहता है ॥ ११ ॥

मूलम् ।

उत्पत्तिमायतिं स्थानं विभुत्वं चैव पञ्चधा अध्यात्मं चैव प्राणस्य विज्ञायामृतमश्नुते विज्ञायामृतमश्नुत इति १३ प्रश्नः ३ ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ।

उत्पत्तिम्, आयतिम्, स्थानम्, विभुत्वम्, च, एव, पञ्चधा, अध्यात्मम्, च, एव, प्राणस्य, विज्ञाय, अमृतम्, अश्नुते, विज्ञाय, अमृतम्, अश्नुते, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
इति	ऐसा	पञ्चधा	उसके पांच प्रकारके
+ प्राणोपासकः	प्राणका उपासक	विभुत्वम् एव	व्यापकत्व को
प्राणस्य	प्राण के	च	और
उत्पत्तिम्	उत्पत्ति को	अध्यात्मम्	अध्यात्म को
+ च	और	एव	भी
आयतिम्	शरीर विषे उसके आगमन को	विज्ञाय	भली प्रकार जानके
+ च	और	अमृतम्	मोक्ष को
स्थानम्	शरीर विषे उसके स्थान को	अश्नुते	प्राप्त होता है
+ च	और	विज्ञाय	भली प्रकार जानके
		अमृतम्	मोक्ष को
		अश्नुते	प्राप्त होता है

भावार्थ ।

उत्पत्तिमिति । मुख्य प्राण की परमात्मा से उत्पत्ति है और मन करके किये गये जो कर्मों के धर्माऽधर्मरूपी संस्कार हैं उन्हीं के प्रेरणा करके प्राण शरीर में प्रवेश करता है, और अपने को पांच विभाग करके स्थित होता है, जो प्राण सूर्यादिलोकों में और आकाशादि पंच

महाभूतों में स्थित है, वह राजा की तरह है वह अपनी प्रजारूपी जीव संयुक्त प्राणों पर अनुग्रह करता है, और तब ही जीव कार्य के करने में समर्थ होता है, जो कुछ विद्यमान है, सब प्राणों की ही विभूति है, इसीसे इसको अध्यात्म भी कहते हैं जो पुरुष पूर्वोक्त प्रकार करके प्राणों को जानता है, वह हिरण्यगर्भ की सायुज्यतारूपी मोक्ष को प्राप्त होता है, अर्थात् आत्मानन्द को प्राप्त होकर आवागमन से रहित हो जाता है ॥ १२ ॥

इति तृतीयः प्रश्नः ॥

मूलम् ।

अथ हैनं सौर्य्यायणी गार्ग्यः पप्रच्छ भगवन्नेतस्मिन् पुरुषे कानि स्वपन्ति कान्यस्मिन् जाग्रति कतर एष देवः स्वप्नान्पश्यति कस्यैतत् सुखं भवति कस्मिन् नु सर्वे संप्रतिष्ठिता भवन्तीति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, एनम्, सौर्यायणः, गार्ग्यः, पप्रच्छ, भगवन्, एतस्मिन्, पुरुषे, कानि, स्वपन्ति, कानि, अस्मिन्, जाग्रति, कतरः, एषः, देवः, स्वप्नान्, पश्यति, कस्य, एतत्, सुखम्, भवति, कस्मिन्, नु, सर्वे, सम्प्रतिष्ठिताः, भवन्ति, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	तृतीय प्रश्न के पश्चात्
ह	प्रसिद्ध
एनम्	पिप्पलाद मुनि से
गार्ग्यः	गर्गगोत्र विषे उत्पन्न हुआ
सौर्यायणः	सौर्यायण नामक ऋषि
इति	ऐसा
पप्रच्छ	प्रश्न करता भया कि
भगवन्	हे भगवन्
एतस्मिन्	इस
पुरुषे	पुरुष विषे
कानि	कौन इन्द्रियां
स्वपन्ति	सोती हैं अर्थात् स्वकार्य से रहित हो विश्राम करती हैं

च=और
अस्मिन्=इस सुप्तपुरुष विषे
कानि=कौनसी इन्द्रियां
जाग्रति=जागती हैं याने व्यापार को करती हैं
कतरः=कौन
एषः=यह
देवः=देव
स्वप्नान्=स्वप्नोंको अर्थात् स्वप्नावस्था विषे जाग्रवत् स्वप्नके व्यापारों को
पश्यति=देखता है
कस्य=किस पुरुष को

एतत्=इस सुषुप्ति अवस्था विषे प्रसिद्ध
सुखम्=सुख
भवति=होता है
नु=और
कस्मिन्=किस विषे
सर्वे=सब इन्द्रियां
सम्प्रतिष्ठिताः=जाग्रत और स्वप्नअवस्था से विलक्षण आनंदित व्यापार-रहित हो आनंद सें
भवन्ति=प्रवेश करती हैं

भावार्थ ।

अथेति । कौशल्यनामक ऋषिके प्रश्नके अनन्तर सौर्य्यायणि गर्ग-गोत्रवंशी पिप्पलाद मुनिसे पूंछता भया ॥ हे भगवन् ! इस हाथ पांव-वाले शरीर में कौन कौन इन्द्रियां शयन करती हैं अर्थात् स्वकार्य से रहित होकर विश्राम करती हैं और कौन इन्द्रियां इस शरीर में जागती हैं अर्थात् जाग्रत् अवस्था में अपने व्यापार को करती हैं और इस कार्य कारणरूपी संघात में कौन देव अहं पश्यामि अहं शृणोमि मैं देखताहूं, मैं सुनताहूं ऐसा अनुभव करता है, और यही स्वप्न के गजरथादिकों को कौन रचता है व देखता है और जाग्रत् व स्वप्न के उपरत होजाने पर कौन देव सुषुप्ति के सुख को भोग करता है और फिर किस देवता विषे सम्पूर्ण प्राण इन्द्रियादि एकता को प्राप्त होकर लीन हो जाती हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

तस्मै स होवाच यथा गार्ग्यमरीचयोऽर्कस्याऽस्तङ्गच्छतः सर्वा एतस्मिंस्तेजोमण्डल एकीभवन्ति ताः पुनः पुनरुदयतः प्रचरन्त्येवं ह

वैतत्सर्वम्परे देवे मनस्येकीभवन्ति तेन तर्ह्येष पुरुषो न शृणोति न पश्यति न जिघ्रति न रसयते न स्पृशते नाभिवदते नादत्ते नानन्द-यते न विसृज्यते नेयायते स्वपितीत्याचक्षते ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तस्मै, सः, ह, उवाच, यथा, गार्ग्यमरीचयः, अर्कस्य, अस्तम्, गच्छतः, सर्वाः, एतस्मिन्, तेजोमण्डले, एकीभवन्ति, ताः, पुनः, पुनः, उदयतः, प्रचरन्ति, एवम्, ह, वा, एतत्, सर्वम्, परे, देवे, मनसि, एकीभवन्ति, तेन, तर्हि, एषः, पुरुषः, न, शृणोति, न, पश्यति, न, जिघ्रति, न, रसयते, न, स्पृशते, न, अभिवदते, न, आदत्ते, न, आनन्दयते, न, विसृज्यते, न, इयायते, स्वपिति, इति, आचक्षते ॥

अन्वयः	पदार्थ
तस्मै	तिस गार्ग्य के प्रति
सः	वह पिप्पलादमुनि
ह	निश्चयकरके
उवाच	कहतेभये कि
गार्ग्य	हे गार्ग्य
यथा	जैसे
अस्तम्	अस्त को
गच्छतः	प्राप्त होते हुये
अर्कस्य	सूर्य के
सर्वाः	सब
मरीचयः	किरण
एतस्मिन्	उस सूर्यरूप
तेजोमंडले	तेजोमंडल विषे
एकीभवन्ति	एकता को प्राप्त हो जाते हैं
च	और
उदयतः	उदय होतेहुये सूर्यके
ताः	वे किरण
पुनः पुनः	फिर
प्रचरन्ति	फैल जाते हैं
एवम् एव	ऐसेही
यदा	जब
एतत्	यह
सर्वम्	सब विषय इन्द्रियां
परे देवे	चक्षुरादि देवों का परमदेव
मनसि	मन विषे
एकीभवन्ति	एकता को प्राप्त हो जाती हैं
तर्हि	तब
तेन	तिस कारण
एषः	यह
पुरुषः	पुरुष
न शृणोति	न सुनता है

न पश्यति=न देखता है
न जिघ्रति=न सूंघता है
न रसयते=न रस लेता है
न स्पृशते=न स्पर्श करता है
न अभिवदते=न बोलता है
न आदत्ते=न ग्रहण करता है
न आनन्दयते=न आनंदित होता है
न विसृजते=न मलमूत्र को त्यागता है
न इयायते=न गमन करता है
+ परन्तु=परंतु
स्वपिति इति=सोता है ऐसा
आचक्षते=कहते हैं लोक विषे

भावार्थ ।

तस्मा इति । पिप्पलाद आचार्य कहते हैं कि स्वप्नावस्था में मन और प्राणों से भिन्न जितने इन्द्रिय हैं, वे सब सोजाते हैं और इसी बातके पुष्ट के लिये दृष्टान्त को दिखाते हैं, हे गार्ग्य ! जैसे सायङ्काल समय जब सूर्य्य अस्तभाव को प्राप्त होता है, तब सूर्य्य की सम्पूर्ण किरणें उसी तेजोरूप सूर्य्यमण्डल में प्रवेश कर जाती हैं, फिर दूसरे दिन जब सूर्य्य उदय होता है, तब फिर सूर्य्य की सम्पूर्ण किरणें चारों दिशों में फैल जाती हैं, इसी प्रकार सम्पूर्ण वागादिक इन्द्रियां भी मन में जो सब व्यवहारों का साधक है स्वप्न व सुषुप्ति काल विषे लय को प्राप्त होजाती हैं और फिर जाग्रत्काल में उठकर मनदेव की प्रेरणा करके स्वकार्य करने लगती हैं, जब इन्द्रियां मन विषे लीन रहती हैं, तब यह जीव न सुनता है, न देखता है, न सूंघता है, न रस लेता है, न स्पर्श करता है, न बोलता है, न ग्रहण करता है, न त्यागता है, न गमन करता है, न सुख भोगता है, और न मल मूत्र का विसर्जन करता है, और विद्वान् लोग कहते हैं कि अब यह पुरुष शयन करता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

प्राणाग्नय एवैतस्मिन् पुरे जाग्रति गार्हपत्यो ह वा एषोऽपानो व्यानोऽन्वाहार्य्यपचनो यद्गार्हपत्यात्प्रणीयते प्रणयनादाहवनीयः प्राणः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

प्राणाग्नयः, एव, एतस्मिन्, पुरे, जाग्रति, गार्हपत्यः, ह, वा, एषः, अपानः, व्यानः, अन्वाहार्यपचनः, यत्, गार्हपत्यात्, प्रणीयते, प्रणयनात्, आहवनीयः, प्राणः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
एतस्मिन्=इस नवद्वारवाले		व्यानः=व्यान वायु	
पुरे=देह विषे चक्षुरादि करणके सुषुप्तिसमय		अन्वाहार्यपचनः=दक्षिणाग्नि नामा अग्नि है	
प्राणाग्नयः=प्राणादि पांच वायु अग्निरूप		यत्=जो अग्नि	
एव=ही		प्रणयनात्=प्रणयन योग्य याने लेआने योग्य	
जाग्रति=जागते रहते हैं		गार्हपत्यात्=गार्हपत्य अग्नि से	
ह वा=उन पांचों विषे		प्रणीयते=लाया जाता है	
एषः=प्रसिद्ध यह		सः=वह	
अपानः=अपान वायु		प्राणः=प्राण	
गार्हपत्यः=गार्हपत्याग्नि है		आहवनीयः=आहवनीय नामक अग्नि है	
+ च=और			

नोट—गार्हपत्याग्नि—दक्षिणाग्नि—आहवनीयाग्नि—ये तीन प्रकारके अग्नि यज्ञ आदि विषे प्रसिद्ध हैं (१) गार्हपत्याग्नि यजमान के वाम कुण्ड का अग्नि है (२) और दक्षिणाग्नि यजमान के दहने कुण्ड का अग्नि है (३) और आहवनीयाग्नि वह अग्नि है जो गार्हपत्याग्नि से निकालकर मध्य अग्निकुण्ड विषे स्थापन कियाजाता है ॥

भावार्थ ।

प्राणाग्नय इति ॥ सुषुप्तिकाल में इस नवद्वारवाले देह विषे जो प्राण, अपान, उदान, व्यान, समानरूपी पांच अग्नि हैं वेई जागते हैं, अपानवायु मलमूत्रको नीचेकी तरफ़ फेंकता है इसलिये यह गार्हपत्य अग्नि स्थानापन्न है, व्यानवायु भोजनादि को पचाता है इसलिये वह अन्वाहार्य पचनरूप अग्नि है, अर्थात् दक्षिणाग्नि है जैसे दक्षिणाग्नि हवन

करने के कुण्ड में दक्षिण ओर स्थित होती है तैसे व्यानवायु भी हृदय के पांच छिद्रोंमें से दक्षिणवाले छिद्रमें स्थित है और इसी कारण व्यान को दक्षिणाग्नि कहा है और जैसे अग्निहोत्री के हवनकुण्ड में निरन्तर स्थित जो कि गार्हपत्याग्नि है उस अग्नि से अलग अग्नि निकाल करके होम के लिये आहवनीय अग्नि होमके कुण्ड में रक्खा जाता है तैसेही हृदयछिद्र में स्थित जो अपानवायु है, उसीसे निकस करके प्राणवायु बाहर भीतर नासिका आदिद्वार से आताजाता है, यही आहवनीय स्थानापन्न अग्नि है, यह मुखअग्नि है, पूर्वमन्त्र में अपान व्यान समान और प्राणके साथ गार्हपत्याग्नि दक्षिणापत्याग्नि, आहवनीय अग्निको विधान किया है अब इस मन्त्रमें समान वायुको होतृत्वदृष्टि से विधान करते हैं ॥ ३ ॥

मूलम् ।

यदुच्छ्वासनिःश्वासावेतावाहुती समं नयतीति स समानः मनो ह वाव यजमान इष्टफलमेवोदानः स एनं यजमान महरहर्ब्रह्मगमयति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

यत्, उच्छ्वासनिःश्वासौ, एतौ, आहुती, समम्, नयति, इति, सः, समानः, मनः, ह, वाव, यजमानः, इष्टफलम्, एव, उदानः, सः, एनम्, यजमानम्, अहरहः, ब्रह्म, गमयति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यत्=	जो	समम्=	समानताको
एतौ=	इन प्रसिद्ध	नयति=	प्राप्त करता है
उच्छ्वास निःश्वासौ =	ऊर्ध्व श्वास अधःश्वासरूप	सः समानः=	सो समान वायु है
आहुती=	आहुतियों को	ह वाव=	इसअग्निहोत्र कुंडरूपी शरीर विषे
इति=	इसप्रकार	मनः=	मन

यजमानः=यज्ञका कर्ता है
उदानः=उदानवायु
एव=ही
तस्य=उसका
इष्टफलम्=इच्छितफल है
सः=सो उदान वायु

एनम्=इस मनरूपी
यजमानम्=यजमान को
अहरहः=प्रतिदिनसुषुप्ति-
कालविषे
ब्रह्म=ब्रह्मको
गमयति=प्राप्त करता है

भावार्थ ।

यदुच्छ्वासेति । जैसे होता अर्थात् हवन का करनेवाला प्रातः-काल और सायंकाल दो आहुती को अग्नि में प्रक्षेप करता है याने डालता है, तैसेही मुख और नासिका दो अग्निकुण्ड हैं, इनमें श्वासों का आना जाना मानो दो आहुती हैं, इन्हीं को इन हवनकुण्डों में समान वायु आहुती देता है, इसलिये होता उपासक अपनी दृष्टि को इनमें ही लगाये रक्खै, और इस अग्निहोत्ररूपी यज्ञ का करनेवाला यजमान मन है, और इस यज्ञ का इष्टफल उदान वायु है क्योंकि मरणकाल में उदानही स्वर्गरूपी फल मनसंघ जीवको प्राप्त करता है और सुषुम्णानाड़ी द्वारा स्वर्ग को लेजाता है और आनंद को प्राप्त करता है और जबतक मनरूपी यजमान इस शरीर में रहता है, तबतक उदान वायु उसको प्रतिदिन सुषुप्तिकाल में आनन्दरूप ब्रह्म को प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अत्रैष देवः स्वप्ने महिमानमनुभवति यद्दृष्टंदृष्टमनुपश्यति श्रुतं श्रुतमेवार्थमनुशृणोति देशदिगन्तरैश्च प्रत्यनुभूतं पुनः पुनः प्रत्यनुभवति दृष्टं चादृष्टं च श्रुतं चाश्रुतं चानुभूतं चाननुभूतं च सच्चासच्च सर्वं पश्यति सर्वः पश्यति ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अत्र, एषः, देवः, स्व,, महिमानम्, अनुभवति, यत्, दृष्टम्, दृष्टम्,

अनुपश्यति, श्रुतम्, श्रुतम्, एव, अर्थम्, अनुशृणोति, देशदिगन्तरैः, च, प्रत्यनुभूतम्, पुनः, पुनः, प्रत्यनुभवति, दृष्टम्, च, अदृष्टम्, च, श्रुतम्, च, अश्रुतम्, च, अनुभूतम्, च, अननुभूतम्, च, सत्, च, असत्, च, सर्वम्, पश्यति, सर्वः, पश्यति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अत्र	सुषुप्तिअवस्था से प्रथम
स्वप्ने	स्वप्न अवस्था विषे
एषः	यह
देवः	मनरूपी देव
महिमानम्	विभूतिको अर्थात् विषयरूपी अनेकभावों को
अनुभवति	अनुभव करता है
च	और
यत्	जिस पुत्र मित्र आदिकों को
दृष्टं दृष्टम्	पुनः पुनः देखा है उसीको
अनुभवति	देखता है
श्रुतम् श्रुतम्	पुनः पुनः श्रवण किये हुये
एव	ही
अर्थम्	अर्थको
अनुशृणोति	फिर श्रवण करता है
च	और
देशदिगन्तरैः	देशांतर और दिगंतरों के सहित
प्रत्यनुभूतम्	वहां वहां अनुभव किये वस्तुको
पुनः पुनः	फिर फिर
प्रत्यनुभवति	अनुभव करता है
च	और
दृष्टम्	इस जन्म में देखे हुये को
च	और
अदृष्टम्	जन्मान्तरविषे देखेहुये को
च	और
श्रुतम्	इस जन्मविषे सुनेहुये को
च	और
अश्रुतम्	जन्मान्तर विषे सुनेहुये को
च	और
अनुभूतम्	अनुभव किये हुये को
च	और
अननुभूतम्	न अनुभव किये हुये
सर्वम्	सबको
पश्यति	देखता है
एवम्	इस प्रकार
सर्वः	सब इन्द्रियों का स्वामी मन
पश्यति	स्वप्नोंको देखता है

भावार्थ ।

अत्रेति । यह जो प्रश्न था कि कौन देवता स्वप्न को देखता है अब उस के उत्तर को कहते हैं ॥ अत्रति ॥ इस स्वप्नावस्था में वागादि इन्द्रियों की उत्पत्ति और लय का आश्रयभूत जो कि मन है सो चेतन करके प्रतिबिंबित हुआ २ अपनी महिमा को आपही अनुभव करता है, अर्थात् स्वप्नमें हाथी घोड़े आदिकों को आपही मन रचता है, और आपही उनको अनुभव करता है, इसीकारण स्वप्न मनकाही धर्म है, आत्माका धर्म नहीं है, हां आत्मा के साथ मनका अध्यास होने से वह आत्मा याने मनसे ही प्रतीत होता है, जो कुछ जाग्रत्काल में मन ने देखा है, उसी को फिर स्वप्न में देखता है, जो कुछ जाग्रत् में सुनाहै, उसीको फिर सुनता है जो कुछ देशदेशांतर में देखा या सुना है, या अनुभव किया है या नहीं देखा सुना या अनुभव किया है उसीको स्वप्न में वारंवार अनुभव करता है, और जो इस वर्त्तमान जन्ममें देखा है या जो पूर्व जन्मों में देखा है, और जो कुछ इस जन्ममें या पूर्व जन्ममें सुना है, और स्थूल सूक्ष्म पदार्थों को अनुभव किया है, उन सब को स्वप्न में देखता है ॥ प्र० ॥ जो पदार्थ जाग्रत् में देखे थे वे तो यहां प्रथम रहे नहीं और जो पदार्थ कि पूर्व जन्ममें देखे थे वे सब नष्ट होगये, तब फिर स्वप्न में मन उनको कैसे देख सक्ता है ॥ उ० ॥ जाग्रत् अवस्थामें पुरुष जिस २ पदार्थ को देखता है, उस उस पदार्थ के संस्कार मनमें बैठ जाते हैं, और जन्मान्तरों में जो पदार्थ देखे थे-उनके भी संस्कार मन में बैठे हैं वे संस्कार अनन्त हैं, स्वप्नावस्था में निद्राके बल से वे संस्कार उद्बुद हो आते हैं, और पूर्वले देखे सुनें हुये पदार्थों का स्मरण कराही देते हैं, मन उनको नई तरह से रचकर फिर उनको ही देखता और उनके साथ क्रीड़ा करता है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

स यदा तेजसाऽभिभूतो भवति अत्रैष देवः स्वप्नान्न पश्यत्यथ तदैतस्मिञ्छरीरे एतत्सुखं भवति ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

सः, यदा, तेजसा, अभिभूतः, भवति, अत्र, एषः, देवः, स्वप्नान्, न, पश्यति, अथ, तदा, एतस्मिन्, शरीरे, एतत्, सुखम्, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यदा=जब सुषुप्तिकाल विषे		स्वप्नान्=स्वप्नोंको	
सः=वह मनरूपी देव		न=नहीं	
तेजसा=तेजसे		पश्यति=देखता है	
अभिभूतः=तिरस्कृत अर्थात् वासना तिरोभाव		अथ तदा=और तबही	
भवति=होता है		एतस्मिन्=इस	
अत्र=तब		शरीरे=शरीर विषे	
एषः=यह		एतत्=यह सुषुप्ति	
देवः=मनरूपी देव		सुखम्=आनन्द	
		तस्य मनसः=उस मनको	
		भवति=होता है	

भावार्थ ।

स यदेति । किसको यह सुख होता है ऐसा जो ऋषि ने प्रश्न किया था उसके उत्तर को कहते हैं ॥ स यदेति ॥ जिस काल में यह मनरूपी देवता तेज करके याने नाड़ीगत पित्त करके तिरस्कृत होजाता है और वासनों के उद्भूत करनेवाले कर्म सब उपरम होजाते हैं तब सम्पूर्ण कर्मों के उपरमरूपी सुषुप्ति में यह मन देववासनामय स्वप्न के पदार्थों को नहीं देखता है किन्तु ब्रह्मानन्द सुखको प्राप्त होता है इस कहने से यह सिद्ध होता है कि सुषुप्ति में भी सूक्ष्मरूप करके मन रहता है ॥ ६ ॥

मूलम् ।

स यथा सौम्य वयांसि वासोवृक्षं संप्रतिष्ठन्ते एवं ह वैतत्सर्वं पर आत्मनि सम्प्रतिष्ठते ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

सः, यथा, सौम्य, वयांसि, वासोवृक्षम्, सम्प्रतिष्ठन्ते, एवम्, ह, वा, एतत्, सर्वम्, परे, आत्मनि, सम्प्रतिष्ठते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सौम्य=	हे सौम्य हे गार्ग्य	एवम् ह वा=	ऐसेही आगले मंत्रविषे कहा हुआ
सः=	सो दृष्टांत ऐसा है कि	ह वा=	निश्चय करके
यथा=	जैसे	एतत्=	यह
वयांसि=	पक्षी	सर्वम्=	पृथिवी आदि सब सुषुप्तिकाल में
वासोवृक्षम्=	सायंकाल विषे निवास वृक्षपर	परे=	परम
		आत्मनि=	आत्माविषे
सम्प्रतिष्ठन्ते=	अन्य कार्य्यके त्यागके प्रस्थान करतेहैं	सम्प्रतिष्ठन्ते=	प्रस्थान करते हैं याने लीन होते हैं

भावार्थ ।

स यथेति । यह जो प्रश्न था कि सम्पूर्ण इन्द्रियादिक किसके आश्रित स्थित हैं इसके उत्तर को अब कहते हैं ॥ स यथेति ॥ हे सौम्य ! जिसप्रकार पक्षी दिन विषे चारों दिशामें भ्रमण करते रहते हैं और सायंकाल समय निवास के लिये अपने वृक्षपर आजाते हैं, इसीप्रकार यह सम्पूर्ण इन्द्रियगण भी दिनमें अपने २ व्यवहार को करतीहैं और रात्री को सुषुप्तिकाल विषे अपने चैतन्य आत्मारूपी वृक्षपर स्थिति करती हैं ॥ ७ ॥

मूलम् ।

पृथिवी च पृथिवीमात्रा चापश्चापोमात्रा च तेजश्च तेजोमात्रा च वायुश्च वायुमात्रा चाकाशश्चाकाशमात्रा च चक्षुश्च द्रष्टव्यं च श्रोत्रं च श्रोतव्यं च घ्राणं च घ्रातव्यं च रसश्च रसयितव्यं च त्वक् च

स्पर्शयितव्यं च वाक् च वक्तव्यं च हस्तौ चादातव्यं चोपस्थश्चानन्दयितव्यं च पायुश्च विसर्जयितव्यं च पादौ च गन्तव्यं च मनश्च मन्तव्यं च बुद्धिश्च बोद्धव्यं चाहंकारश्चाहंकर्त्तव्यं च चित्तं च चेतयितव्यं च तेजश्च विद्योतयितव्यं च प्राणश्च विधारयितव्यं च ॥८॥

पदच्छेदः ।

पृथिवी, च, पृथिवीमात्रा, च, आपः, च, आपोमात्रा, च, तेजः, च, तेजोमात्रा, च, वायुः, च, वायुमात्रा, च, आकाशः, च, आकाशमात्रा, च, चक्षुः, च, द्रष्टव्यम्, च, श्रोत्रम्, च, श्रोतव्यम्, च, घ्राणम्, च, घ्रातव्यम्, च, रसः, च, रसयितव्यम्, च, त्वक्, च, स्पर्शयितव्यम्, च, वाक्, च, वक्तव्यम्, च, हस्तौ, च, आदातव्यम्, च, उपस्थः, च, आनन्दयितव्यम्, च, पायुः, च, विसर्जयितव्यम्, च, पादौ, च, गन्तव्यम्, च, मनः च, मन्तव्यम्, च, बुद्धिः, च, बोद्धव्यम्, च, अहंकारः, च, अहङ्कर्त्तव्यम्, च, चित्तम्, च, चेतयितव्यम्, च, तेजः, च, विद्योतयितव्यम्, च, प्राणः, च, विधारयितव्यम्, च ॥

अन्वयः	पदार्थ
१	पृथिवी=स्थूल पृथिवी
	च=और
	पृथिवीमात्रा=सूक्ष्मपृथिवी
२	च=ऐसेही
	आपः=जल
	च=और
	आपोमात्रा=सूक्ष्मजल
	च=ऐसेही
३	तेजः=तेज
	च=और
	तेजोमात्रा=सूक्ष्मतेज
	च=ऐसेही
४	वायुः=वायु
	च=और
	वायुमात्रा=सूक्ष्मवायु
५	च=ऐसेही
	आकाशः=आकाश
	च=और
	आकाशमात्रा=सूक्ष्म आकाश
	एतानि पंच महाभूतानि=ये पांच महाभूत हैं
	च=ऐसेही
	वाक्=वाणी
१	च=और
	वक्तव्यम्=वाक्इन्द्रियका विषय
	च=ऐसेही
२	हस्तौ=दोनोंहाथ
	च=और

आदातव्यम्=हाथों का विषय
च=ऐसेही

३ { उपस्थः=उपस्थ इन्द्रिय
च=और
आनन्द- यितव्यम् = उपस्थ इन्द्रिय का विषय }

च=ऐसेही

४ { पायु=गुदा इन्द्रिय
च=और
विसर्ज- यितव्यम् = गुदा इन्द्रिय का विषय }

च=वैसेही

५ { पादौ=दोनों चरण
च=और
गन्तव्यम्=चरण इन्द्रिय का विषय }

+ एतानि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि = ये पांच कर्मेन्द्रियां हैं

च=ऐसेही

१ { चक्षुः=नेत्र इन्द्रिय
च=और
द्रष्टव्यम्=नेत्र इन्द्रिय का विषय }

च=ऐसेही

२ { श्रोत्रम्=श्रवण इन्द्रिय
च=और
श्रोतव्यम्=श्रोतइन्द्रिय का विषय }

च=ऐसेही

३ { घ्राणम्=नासिका इन्द्रिय
च=और
घ्रातव्यम्=घ्राणका विषय }

च=ऐसेही

४ { रसः=रसना इन्द्रिय
च=और
रसयितव्यम्=रसना इन्द्रिय का विषय }

च=ऐसेही

५ { त्वक्=त्वक् इन्द्रिय
च=और
स्पर्श- यितव्यम् = त्वक् इन्द्रिय का विषय }

+ एतानि पंच ज्ञानेन्द्रियाणि = ये पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं

च=ऐसेही

१ { मनः=मन
च=और
मन्तव्यम्=मन इन्द्रिय का विषय }

च=ऐसेही

२ { बुद्धिः=बुद्धि
च=और
बोद्धव्यम्=बुद्धीन्द्रिय का विषय }

च=ऐसेही

३ { अहङ्कारः=अहंकार
च=और
अहङ्कर्तव्यम्=अहङ्कार का विषय }

च=ऐसेही

४ { चित्तम्=चित्त
च=और
चेतायितव्यम्=चित्त का विषय }

च=ऐसेही

तेजः=तेज

च=और

विद्योतयितव्यम्=तेज का विषय

च=ऐसेही

प्राणः=प्राण

च=और

विधारयितव्यम्=	प्राण सूत्रात्मा करके धारण करने योग्य नामरूपात्मक सब जगत्	+ एतानि सर्वाणि आत्मनि लीनानि भवन्ति	= ये सब पिछले मंत्रमें कहेहुये आत्मा विषे लीन होते हैं

भावार्थ ।

पृथिवी चेति । स्थूल पृथिवी और इसका कारण गंधतन्मात्रा, स्थूल जल और इसका कारण रसतन्मात्रा, स्थूल अग्नि और इसका कारणरूप तन्मात्रा, स्थूलवायु और इसका कारण स्पर्शतन्मात्रा, स्थूल आकाश और इसका कारण शब्द तन्मात्रा, चक्षु इन्द्रिय और इसका विषयरूप श्रोत्रेन्द्रिय और इसका विषय शब्द, घ्राणेन्द्रिय और इसका विषय गन्ध, रसनाइन्द्रिय और इसका विषय रस, त्वगिन्द्रिय और इसका विषय स्पर्श, वागिन्द्रिय और इसका विषय वक्तव्य, पाणिइन्द्रिय और इसका विषय आदातव्य (ग्रहण करना) पादइन्द्रिय और इसका विषय गन्तव्य, उपस्थेन्द्रिय और इसका विषय मैथुन कर्म्म, गुदाइन्द्रिय और इसका विषय मलत्याग कर्म, मन और इस का विषय मन्तव्य, बुद्धि और इसका विषय बोद्धव्य, अहङ्कार और इसका विषय अहंकर्त्तव्य, चित् और इसका विषय स्मरण, तेज और इसका विषय कान्ति, प्राण और इसका विषय धारणा शक्ति, ये सब परमात्मा केही आश्रित हैं और उसी में लय होते हैं ॥ ८ ॥

मूलम् ।

एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्त्ता विज्ञानात्मा पुरुषः स परेऽक्षरे आत्मनि सम्प्रतिष्ठते ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ।

एषः, हि, द्रष्टा, स्प्रष्टा, श्रोता, घ्राता, रसयिता, मन्ता, बोद्धा, कर्त्ता, विज्ञानात्मा, पुरुषः, सः, परे, अक्षरे, आत्मनि, सम्प्रतिष्ठते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
द्रष्टा	देखनेवाला	एषः	जल विषे सूर्य की छायावत् शरीरोंमें प्रविष्टहुआ यह
स्प्रष्टा	स्पर्श करनेवाला	+ यः	जो
श्रोता	श्रवण करनेवाला	विज्ञानात्मा	सबका ज्ञाता
घ्राता	सूंघनेवाला	पुरुषः	पुरुष यानी जीव है
रसयिता	रस लेनेवाला	सः	सो
मन्ता	मनन करनेवाला	अक्षरे	अविनाशी
बोद्धा	जाननेवाला	परे	परम
कर्त्ता	प्राणादिकों का कर्ता	आत्मनि	आत्मा विषे
		हि	निश्चय करके
		सम्प्रतिष्ठते	लीन होजाता है

भावार्थ ।

एष हीति । केवल जड़ प्रपञ्च पृथिवी आदि कहीं नहीं उस परमात्मा में स्थित हैं किन्तु जीव भी उसी परमात्मा में ही स्थित है ॥ एष हीति ॥ यह जो देखनेवाला है, स्पर्श करनेवाला है, श्रवण करनेवाला है, गन्धका ग्रहण करनेवाला है, रसका स्वाद लेनेवाला है, मनका मनन करनेवाला है, पदार्थों का जाननेवाला है, कर्मों का कर्ता है, वही सबका ज्ञाता पुरुष है, वही जीवआत्मा है, वही शरीर व इन्द्रिय में व्यापक है, वही अक्षर ब्रह्म में स्थित है, उससे भिन्न नहीं है, जैसे प्रतिबिम्ब बिम्ब केही आश्रय है, बिम्ब से भिन्न नहीं है ॥ ६ ॥

मूलम् ।

परमेवाक्षरं प्रतिपद्यते स यो ह वैतदच्छायमशरीरमलोहितं शुभ्रमक्षरं वेदयते यस्तु सौम्य स सर्वज्ञः सर्वो भवति तदेष श्लोकः॥१०॥

पदच्छेदः ।

परम्, एव, अक्षरम्, प्रतिपद्यते, सः, यः, ह, वा, एतत्, अच्छायम्, अशरीरम्, अलोहितम्, शुभ्रम्, अक्षरम्, वेदयते, यः, तु, सौम्य, सः, सर्वज्ञः, सर्वः, भवति, तत्, एषः, श्लोकः ॥

अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	हे सौम्य
यः	जो पुरुष
ह्वा	ईषणारहित
एतत्	इस
अच्छायम्	अज्ञान रहित
अशरीरम्	निराकार
अलोहितम्	निर्गुण
शुभ्रम्	शुद्ध
अक्षरम्	नाश से रहित सत्य ज्ञानानन्द-रूप परमात्मा को
वेदयते	जानता है
सः एव	सोई
परम्	परम
अक्षरम्	ब्रह्मको
प्रतिपद्यते	स्वयं प्राप्त होता है
तु	और
यः	जो
सर्वज्ञः	सबका ज्ञाता है
सः	सोई
सर्वः	सबका आत्मरूप
भवति	होता है
तत्	इस विषे
एषः	यह आगेवाला
श्लोकः	मन्त्र प्रमाण
+ अस्ति	है

भावार्थ ।

परमेवाक्षरमिति । जो सम्पूर्ण जगत् का आधारभूत ब्रह्म है सो अज्ञानरूपी अन्धकार से रहित है, नामरूप प्रपञ्च अर्थात् उपाधियों से रहित है, रक्त पीतादि वर्णों से रहित है, सत्त्व रज तमरूपी गुणों से भी रहित है और इसीकारण वह शुद्ध है, ऐसे ब्रह्म को कोई विरलाही अधिकारी श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठ आचार्य्य के उपदेश करके यथार्थरूप से जानता है, हे सौम्य ! जो अधिकारी पूर्वोक्त ब्रह्मके स्वरूपको अपना आत्मा करके जानलेता है वही सर्वज्ञ है, क्योंकि सर्वको अपना आत्मा करकेही जानता है, वह इसी वर्त्तमान शरीर में जीतेहीजी ब्रह्म होजाता है, इसी अर्थ को आगेवाला मन्त्र भी कहता है ॥ १० ॥

मूलम् ।

विज्ञानात्मा सह देवैश्च सर्वैः प्राणा भूतानि संप्रतिष्ठन्ति यत्र तद-क्षरं वेदयते यस्तु सौम्य स सर्वज्ञः सर्वमेवाविवेशेति ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ।

विज्ञानात्मा, सह, देवैः, च, सर्वैः, प्राणाः, भूतानि, सम्प्रतिष्ठन्ति, यत्र, तत्, अक्षरम्, वेदयते, यः, तु, सौम्य, सः, सर्वज्ञः, सर्वम्, एव, आविवेश, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	हे सौम्य
यत्र	जिस सत्यादि स्वरूप विषे
प्राणाः	सब प्राण चक्षुरादि
च	और
भूतानि	सब भूत पृथिवी आदि
सर्वैः	सम्पूर्ण
देवैःसह	अग्नि आदि देवताओं के साथ
सम्प्रतिष्ठन्ति	सम्यक् प्रकार स्थित होते हैं याने लीन होते हैं
सः	सोई
विज्ञानात्मा	विज्ञानस्वरूप है
च	और
तत्	सोई
अक्षरम्	अविनाशी है
+ च	और
यस्तु	जो
+ तत्	उस अमरको
इति	इस प्रकार
वेदयते	जानता है
सः	सोई
सर्वज्ञः	सबका ज्ञाता हुआ
सर्वं	सब विषे
आविवेश	प्रवेश करता है

भावार्थ ।

विज्ञानात्मेति । जो अन्तःकरणाविशिष्ट जीवात्मा है सोई सम्पूर्ण इन्द्रियों के सहित और पांचों प्राणों के सहित और पृथिवी आदिक पांचोंभूतों के सहित अविनाशी ब्रह्म विषेही लीन होता है, सो जीव आत्मा विज्ञानस्वरूप है, सोई अविनाशी है, जो अधिकारी उसको इस प्रकार जानता है वही सब का ज्ञाता होता है, वही ब्रह्मस्वरूप है, वही जीवनमुक्त है, वही पूजनीय है ॥ ११ ॥

इति चतुर्थः प्रश्नः ४ ॥

मूलम् ।

अथ हैनं शैव्यः सत्यकामः पप्रच्छ स यो ह वैतद्भगवन्मनुष्येषु प्रयाणान्तमोङ्कारमभिध्यायीत कतमं वाव स तेन लोकं जयतीति ॥१॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, एनम्, शैव्यः, सत्यकामः, पप्रच्छ, सः, यः, ह, वा, एतत्, भगवन्, मनुष्येषु, प्रयाणान्तम्, ओंकारम्, अभिध्यायीत, कतमम्, वाव, सः, तेन, लोकम्, जयति, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब	मनुष्येषु	मनुष्यों विषे
ह	प्रसिद्ध	एतत्	इस
शैव्यः	शिविका पुत्र	ओंकारम्	प्रणवको
सत्यकामः	सत्यकाम नामक ऋषि	प्रयाणान्तम्	परलोकयात्रापर्यंत
एनम्	पिप्पलाद आचार्यसे	अभिध्यायीत	उपासना करै
इति	ऐसा	वाव	तौ
पप्रच्छ	पूछताभया कि	तेन	उस उपासना से
भगवन्	हे भगवन्	सः	वह उपासक
सः	वह	कतमम्	किस
यः	जो कोई	लोकम्	लोक को
हवा	निश्चय करके	जयति	जीतता है अर्थात् प्राप्त होता है

भावार्थ ।

अथेति । अब शिविका पुत्र सत्यकाम नामक ऋषि पिप्पलादमुनि से पूछता है हे भगवन् ! मनुष्यों के मध्य में जो कोई अधिकारी ॐकार का ध्यान मरण पर्यन्त करता है, वह उपासक उस उपासना के करने से किस लोक को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

तस्मै स होवाच एतद्वै सत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म यदोंकारस्तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तस्मै, सः, ह, उवाच, एतत्, वै, सत्यकाम, परम्, च, अपरम्, च, ब्रह्म, यत्, ओंकारः, तस्मात्, विद्वान्, एतेन, एव, आयतनेन, एकतरम्, अन्वेति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तस्मै=उस सत्यकाम ऋषि से		परम् च=पर और	
सः=वह पिप्पलाद मुनि		अपरम्=अपर	
उवाच=कहता भया कि		ब्रह्म=ब्रह्म है	
सत्यकाम=हे सत्यकाम		तस्मात्=इसलिये	
वै=प्रसिद्ध		एतेन एव=इस प्रणव के ही	
यत्=जो		आयतनेन=आश्रय करके	
एतत्=यह		विद्वान्=उपासक	
ॐकारः=प्रणव है		एकतरम्=पर या अपर ब्रह्मको	
सः एव=सोई		अन्वेति=प्राप्त होता है	

भावार्थ ।

तस्मै स हेति । तब उस सत्यकाम ऋषिसे पिप्पलादमुनि ने कहा हे सत्यकाम ! यह जो पूर्व कथन किया हुआ सद्रूप निर्गुण परब्रह्म और हिरण्यगर्भरूप करके अपर ब्रह्म है सो पर अपररूप करके ॐकारही है, उसीको प्रणव भी कहते हैं, जो विद्वान् इस प्रणव की उपासना करता है वह पर अथवा अपर ब्रह्म को उपासना अनुसार प्राप्त होता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसम्पद्यते तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमानमनुभवति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सः, यदि, एकमात्रम्, अभिध्यायीत, सः, तेन, एव, संवेदितः,

सूर्णम्, एव, जगत्याम्, अभिसम्पद्यते, तम्, ऋचः, मनुष्यलोकम्, उपनयन्ते, सः, तत्र, तपसा, ब्रह्मचर्य्येण, श्रद्धया, सम्पन्नः, महिमानम्, अनुभवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः	वह उपासक	+ च	और
यदि	अगर	तम्	उस को
एकमात्रम्	एकमात्रावाले प्रणव को याने अकारमात्र को	+ पुनः	फिर
अभिध्यायीत	उपासना करै	ऋचः	ऋग्वेद के मन्त्र
+ तु	तो	मनुष्यलोकम्	मनुष्य शरीर को
सः	वह	उपनयन्ते	प्राप्त करते हैं
तेन	उस उपासना के बल से	+ च पुनः	और फिर
एव	निश्चय करके	तत्र	तिस मनुष्य देह विषे
संवेदितः	सम्यक्प्रकार बोधवान् हुआ	सः	वह उपासक
तूर्णम्	शीघ्र	तपसा	तप करके
एव	ही	ब्रह्मचर्येण	ब्रह्मचर्य्यकरके
जगत्याम्	पृथ्वी विषे	श्रद्धया	श्रद्धा करके
अभिसंपद्येत	जन्म को प्राप्त होता है	सम्पन्नः	युक्त होता हुआ
		महिमानम्	ऐश्वर्य्य को
		अनुभवति	प्राप्त होता है

भावार्थ ।

स यदीति । पूर्व त्रिमात्ररूप ॐकार की उपासना का विधान किया है, अब उस ॐकार की एक मात्रा की उपासना करने से जो उत्तम फल होता है उस को दिखाते हैं ॥ स यदीति ॥ अकार, उकार, मकार, यह तीन ॐकार की मात्रा हैं, इन तीन मात्रों के अग्नि, वायु, सूर्य्य अथवा ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये तीन देवता हैं, भूर्भुवः, स्वः, ये तीन उन तीन मात्रों के स्थान हैं, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति ये

तीन उन की अवस्था हैं, और ऋग्यजुसाम ये उन के तीन वेद हैं, इनके विधान को भलीप्रकार न जानकर जो कोई एकही अकार मात्रा का ध्यान करता है, वह उस मात्रा के बलसे शीघ्रही पृथिवीलोकको प्राप्त होता है, और ऋग्वेद के अभिमानी देवता के प्रसाद से मनुष्यशरीर को पाता है, और तप करके ब्रह्मचर्य्य करके और श्रद्धा करके ऐश्वर्य को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते स सोमलोकं स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्त्तते ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यदि, द्विमात्रेण, मनसि, सम्पद्यते, सः, अन्तरिक्षम्, यजुर्भिः, उन्नीयते, सः, सोमलोकम्, सः, सोमलोके, विभूतिम्, अनुभूय, पुनरावर्त्तते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	और	यजुर्भिः	यजुर्वेद के मंत्रों करके
यदि	अगर	अन्तरिक्षं	अन्तरिक्षविषे
सः	वह उपासक	सोमलोकम्	चंद्रलोकको
द्विमात्रेण	द्विमात्र प्रणवसे याने अकार उकार मात्रा से	उन्नीयते	प्राप्त किया जाता है
मनसि	मन विषे	सः	वह
संपद्यते	ध्यान करताहै अर्थात् उपासना करता है	सोमलोके	चन्द्रलोकविषे
+ तु	तो	विभूतिम्	महिमा को
सः	वह	अनुभूय	भोग करके
		पुनरावर्त्तते	फिर इसलोक विषे जन्मलेताहै

भावार्थ ।

अथेति । और यदि किसी पुण्यविशेषकरके वह उपासक द्विमात्रारूपी

ॐकार का ध्यान मनमें करता है तो वह मरण पश्चात् अन्तरिक्ष विषे चन्द्रलोक को यजुर्वेद के मन्त्रों करके प्राप्त होता है, और सब प्रकार के भागों को भोग करके वह उपासक पुण्य कर्मों के छिन्न होने पर मृत्युलोक को लौट आता है, और कर्मानुसार मनुष्य शरीर को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

यः पुनरेतत् त्रिमात्रेणैवोमित्येतेनैवाक्षरेण परम्पुरुषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्य्ये सम्पन्नो यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं ह वै स पाप्मना विनिर्म्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्माज्जीवघनात्परात्परम्पुरिशयं पुरुषमीक्षते तदेतौ श्लोकौ भवतः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

यः, पुनः, एतत्, त्रिमात्रेण, एव, ॐ, इति, एतेन, एव, अक्षरेण, परम्, पुरुषम्, अभिध्यायीत, सः, तेजसि, सूर्य्ये, सम्पन्नः, यथा, पादोदरः, त्वचा, विनिर्मुच्यते, एवम्, ह, वै, सः, पाप्मना, विनिर्म्मुक्तः, सः, सामभिः, उन्नीयते, ब्रह्मलोकम्, सः, एतस्मात्, जीवघनात्, परात्परम्, पुरिशयम्, पुरुषम्, ईक्षते, तत्, एतौ, श्लोकौ, भवतः ॥

अन्वयः	पदार्थ
पुनः	और
यः	जो उपासक
त्रिमात्रेण	तीन मात्रा वाले अकार उकार मकार करके युक्त
एतेन	इस
अक्षरेण	पूर्ण अक्षर
ओम् इति	ओम् करके
एतत् एव	उसी
परं पुरुषम्	परमपुरुषको
एव	निश्चयपूर्वक
अभिध्यायीत	उपासना करै
एव	तो
सः	वह उपासक
तेजसि सूर्य्ये	तेजरूप सूर्य विषे
संपन्नः	संयुक्त होताहै
च	और
यथा	जैसे
पादोदरः	सर्प

त्वचा=प्राचीन त्वचा से
विनिर्मुच्यते=मुक्त होता है
एवम् ह वै=ऐसेही
सः=वह उपासक
पाप्मना=पाप से
विनिर्मुक्तः=छूटाहुआ
सामभिः=सामवेद के मंत्रों करके
ब्रह्मलोकम्=हिरण्यगर्भलोकको
उन्नीयते=प्राप्त कियाजाता है
+च=और
सः=फिर वह उपासक
एतस्मात्=इस
परात्=उत्कृष्ट
जीवघनात्=हिरण्यगर्भ से भी
परम्=सर्वोत्कृष्ट
पुरिशयम्=नवद्वार आदिपुरविषे शयन करनेवाले
पुरुषम्=परमपुरुष को
ईक्षते=देखता है याने प्राप्त होता है
तत्=तिस विषे
एतौ=ये दोनों
श्लोकौ=मन्त्र
भवतः=प्रमाण हैं

भावार्थ ।

यः पुन इति । जो उपासक इस प्रसिद्ध ओंकारकी तीन मात्रा याने अकार उकार मकार की उपासना को करता है और उसी ॐकार अक्षर करके पूर्ण परमात्मा का जो सूर्य्यमंडलविषे स्थित है ध्यान करता है, वह सूर्य्यमंडलमें जा प्राप्त होता है और भयानक पाप से छूट जाता है, और जैसे सर्प अपनी पुरानी त्वचा के त्यागने से नवीन सुंदर प्रतीत होनेलगता है इसी प्रकार ॐकारका उपासक भी अपने पापरूपी त्वचा सूक्ष्मशरीर के त्यागने पर शुद्ध निर्मल होजाता है और तब सामवेद के मंत्र जिसको उसने चित्त लगाकर अध्ययन किया था उस उपासक को ब्रह्मलोक में ले जाकर प्राप्त कर देते हैं और वहां पर वह हिरण्यगर्भ आत्मा से संयुक्त होजाता है और फिर आवागमन से मुक्त हो जाता है इसमें अगलेवाले दोनों मंत्र प्रमाण हैं ॥ ५ ॥

मूलम् ।

तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योऽन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु सम्यक्प्रयुक्तासु न कम्पते ज्ञः ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

तिस्रः, मात्राः, मृत्युमत्यः, प्रयुक्ताः, अन्योन्यसक्ताः, अनुविप्रयुक्ताः, क्रियासु, वाह्याभ्यन्तरमध्यमासु, सम्यक्प्रयुक्तासु, न, कम्पते, ज्ञः ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ ॐकारस्य	प्रणव की
तिस्रः	अकार उकार मकाररूप तीन
मात्राः	मात्रा
प्रयुक्ताः	केवल वरण ध्यान विषे उपासना की हुई
मृत्युमत्यः	मृत्युविषयक हैं अर्थात् अपर ब्रह्म को प्राप्त करने वाली हैं याने आवागमनमें ही फसानेवाली हैं
+ परन्तु	परन्तु
सम्यक्	यथायोग्य
प्रयुक्तासु	विचार करने पर
वाह्याभ्यंतरमध्यमासु क्रियासु	जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति अवस्थाओं विषे
अनुविप्रयुक्ताः	विश्वतैजस प्राज्ञरूप से युक्त हुई
च	और
अन्योन्यसक्ताः	परस्पर एकता को प्राप्त हुई
प्रयुक्ताः	ऐसी उपासना इनतीनमात्राओं से की हुई
ज्ञः	उपासक
न कम्पते	भयको नहीं प्राप्त होता है याने ब्रह्मको ही प्राप्त होता है

नोट—प्रयुक्ताः प्रथमा विभक्ति है परन्तु अर्थ तृतीया का देता है ऐसेही अनुविप्रयुक्ताः अन्योन्यसक्ताः प्रथमा है परन्तु अर्थ तृतीया का देते हैं ॥

भावार्थ ।

तिस्रो मात्रेति । ब्रह्मदृष्टि से भिन्न अकार, उकार, मकार जो ॐकार की तीनों मात्रा हैं अपने उपासक को आवागमन से रहित नहीं करसक्ती हैं, अर्थात् केवल इन अक्षरों के जपसेही मुक्ति नहीं होती है, इसलिये ब्रह्मदृष्टि ॐकार में करनी चाहिये, क्योंकि ब्रह्मज्ञान के बिना केवल मात्रा का जप अपकर्षता का हेतु है तीनों मात्रों

को मिलाकरके ॐशब्द होता है; सोई ध्यान करने के योग्य है उसही ॐकारके ध्यानकाल में तीन जो कायिक वाचिक मानसिक क्रिया हैं उनको और जो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ति अभिमानी और जड़ हैं उनको तीनों मात्रों के साथ तादात्म्यता करके जो जानता और ॐकारको ब्रह्मरूप करके जो ध्यान करता है वह कदापि चलायमान नहीं होता है याने ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

मूलम् ।

ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं स सामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान् यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परं चेति ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

ऋग्भिः, एतम्, यजुर्भिः, अन्तरिक्षम्, सः, सामभिः, यत्, तत्, कवयः, वेदयन्ते, तम्, ॐकारेण, एव, आयतनेन, अन्वेति, विद्वान्, यत्, तत्, शान्तम्, अजरम्, अमृतम्, अभयम्, परम्, च, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
इति	इसप्रकार
सः	वह उपासक
ऋग्भिः	प्रथममात्रा अकार के अधिष्ठाता ऋग्वेद के मन्त्रों करके
एतम्	इस मनुष्य लोकको
नीयते	प्राप्त किया जाता है
यजुर्भिः	द्वितीयमात्रा उकार के अधिष्ठाता यजुर्वेद के मंत्रों करके
अंतरिक्षम्	अंतरिक्ष विषे चन्द्रलोकको
नीयते	प्राप्त किया जाताहै
सामभिः	तृतीय मात्रा मकारके अधिष्ठाता सामवेद के मंत्रों करके
यत्तत्	जिसको
कवयः	त्रिकालदर्शी लोक
वेदयन्ते	जानते हैं और बताते हैं
तम्	उस को याने सत्यलोक को
नीयते	प्राप्तकिया जाता है

विद्वान्=त्रिमात्रप्रणवकी उपासनाका पूर्ण ज्ञानी	अमृतम्=मरणकरके रहित
ॐकारेण=प्रणव के	अभयम्=भयकरके रहित
एव=ही	शान्तम्=शान्त
आयतनेन=द्वारा	च=और
यत्=जो	परम्=सर्वोत्तम पुरुष है
अजरम्=जराकरके रहित	तत्=उसको
	अन्वेति=प्राप्त होता है

भावार्थ ।

ऋग्भिरिति । प्रथम मात्रा अकारके अधिष्ठाता ऋग्वेद के मन्त्रों का अभिमानी उपासक मनुष्य लोक को प्राप्त होता है, द्वितीयमात्रा उकार के अधिष्ठाता यजुर्वेद के मन्त्रों का अभिमानी उपासक चन्द्रलोकको प्राप्त होता है, और तृतीय मात्रा मकार के अधिष्ठाता सामवेद के मन्त्रोंका अभिमानी उपासक ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है, ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं जो तीनों मात्रा का उपासक है वही ब्रह्मज्ञानी है, वह उस पुरुषको प्राप्त होता है जो जराअवस्थासे रहित है अभय है, शान्त है ॥७॥

इति पञ्चमः प्रश्नः ॥ ५ ॥

मूलम् ।

अथ हैनं सुकेशा भारद्वाजः पप्रच्छ भगवन् हिरण्यनाभः कौशल्यो राजपुत्रो मामुपेत्यैतं प्रश्नमपृच्छत् षोडशकलं भारद्वाज पुरुषं वेत्थ तमहं कुमारमब्रुवं नाहमिमं वेद यद्यहमिममवेदिषं कथन्तेनावक्ष्यमिति समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति तस्मान्नार्हाम्यनृतं वक्तुम् स तूष्णीं रथमारुह्य प्रवव्राज तं त्वा पृच्छामि क्वासौ पुरुष इति ॥१॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, एनम्, सुकेशाः, भारद्वाजः, पप्रच्छ, भगवन्, हिरण्यनाभः, कौशल्यः, राजपुत्रः, माम्, उपेत्य, एतम्, प्रश्नम्, अपृच्छत्, षोडशकलम्, भारद्वाज, पुरुषम्, वेत्थ, तम्, अहम्, कुमारम्,

अब्रुवम्, न, अहम्, इमम्, वेद, यदि, अहम्, इमम्, अवेदिषम्, कथम्, तेन, अवक्ष्यम्, इति, समूलः, वै, एषः, परिशुष्यति, यः, अनृतम्, अभिवदति, तस्मात्, न, अर्हामि, अनृतम्, वक्तुम्, सः, तूष्णीम्, रथम्, आरुह्य, प्रवव्राज, तम्, त्वा, पृच्छामि, क्व, असौ, पुरुषः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब
ह	प्रसिद्ध
एनम्	इस पिप्पलाद मुनि से
भारद्वाजः	भरद्वाज का पुत्र
सुकेशाः	सुकेशानामक ऋषि
पप्रच्छ	कहता भया कि
भगवन्	हे भगवन्
कौशल्यः	अयोध्यानिवासी
हिरण्यनाभः	हिरण्यनाभ नामा
राजपुत्रः	क्षत्रिय
माम्	मेरे समीप
उपेत्य	आय के
एतम् प्रश्नम्	इस प्रश्न को
अपृच्छत्	पूछता भया कि
भारद्वाज	हे भारद्वाज मुनि
षोडशकलम्	सोलह कलावाले
पुरुषम्	पुरुष को
वेत्थ	तू जानता है
तम्	उस
कुमारम्	राजपुत्र से
अहम्	मैं
इति	ऐसा
अब्रुवम्	कहा कि

अन्वयः	पदार्थ
+ हे राजपुत्र	हे राजकुमार
अहम्	मैं
इमम्	इस षोडश कला वाले पुरुष को
न वेद	नहीं जानता हूं
यदि अहम्	अगर मैं
इमम्	इस पुरुष को
अवेदिषम्	जानता तो
कथम् ते	कैसे तेरे अर्थ
न अवक्ष्यम्	न कहता किन्तु अवश्य कहता
यः	जो
अनृतम्	मिथ्या को
अभिवदति	कहता है
एषः	वह
वै	अवश्य
समूलः	मूल सहित
परिशुष्यति	दग्ध होजाताहै अर्थात् पापिष्ठ होताहै
तस्मात्	इसलिये
अनृतम्	मिथ्या
वक्तुम्	कहने को
न	नहीं
अर्हामि	योग्यहूं मैं

+एवं श्रुत्वा=ऐसा सुनके	तम्=उस पुरुष को
सः=वह राजपुत्र	त्वा=आपसे
तूष्णीम्=चुपचाप	इति=ऐसा
रथम्=रथ में	पृच्छामि=पूछता हूं कि
आस्थाय=बैठके	असौ=वह
प्रवव्राज=चला गया	पुरुषः=पुरुष
+इदानीं=अब	क=कहां है
अहम्=मैं	

भावार्थ ।

अथेति । इसके अनन्तर सुकेशा नामक भारद्वाज गोत्रोत्पन्न ऋषि पिप्पलाद मुनि से पूछता भया ॥ हे भगवन् ! हिरण्यनाभ नामा राजपुत्र अयोध्याके निवासी मेरे पास आकर कहनेलगा हे भारद्वाज ! षोडशकलावाले पुरुषको आप जानते हो, तब मैंने कहा मैं उस षोडशकलावाले पुरुष को नहीं जानता हूं, यदि मैं उस पुरुष को जानता तो तुम उत्तम अधिकारी के प्रति क्यों न कहता, हे राजकुमार ! जो पुरुष मिथ्याभाषण करता है वह मिथ्यावादी मूल के सहित सूखजाता है, अर्थात् उसके शुभ कर्म जो उत्तम गतिके प्राप्तिके कारण हैं वे सब नष्ट होजाते हैं, इसलिये मैं मिथ्याभाषण के योग्य नहीं हूं ॥ मेरे वचन को श्रवण करके वह राजपुत्र तूष्णीं होकर रथपर बैठके अपने स्थानको चलागया, अब मैं आपसे पूंछताहूं कि वह षोडशकलावाला पुरुष कौन है ॥ १ ॥

मूलम् ।

तस्मै स होवाच इहैवान्तश्शरीरे सौम्य स पुरुषो यस्मिन्नेताः षोडशकलाः प्रभवन्तीति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तस्मै, सः, ह, उवाच, इह, एव, अन्तःशरीरे, सौम्य, सः, पुरुषः, यस्मिन्, एताः, षोडशकलाः, प्रभवन्ति, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तस्मै	=तिस भारद्वाजके प्रति	प्रभवन्ति	=उत्पन्न होती हैं और लय भी होती हैं
ह	=प्रसिद्ध	सः	=सो
सः	=वह पिप्पलाद मुनि	पुरुषः	=पुरुष
इति	=ऐसा	इह एव	=इसही
उवाच	=कहता भया कि	अन्तःशरीरे	=हृत्पुण्डरीकाकाश-विषे
सौम्य	=हे सौम्य	+ अस्ति	=वर्तमान है
यस्मिन्	=जिसमें		
एताः	=ये प्राणादि		
षोडशकलाः	=नाम पर्यंत षोडश-कला		

भावार्थ ।

तस्मै स हेति । तब भारद्वाज गोत्रविषे उत्पन्न हुये सुकेशा ऋषिसे पिप्पलाद मुनि कहते हैं ॥ हे सौम्य ! हे प्रियदर्शन ! इसी शरीर के हृत, पुण्डरीकाकाश विषे वह षोडशकलावाला पुरुष पूर्णरूप से स्थित है, उसीसे प्राणआदि षोडशकला उत्पन्न होती हैं, और उसीमें लय भी होती हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

स ईक्षाञ्चक्रे कस्मिन्नहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामि कस्मिन् वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ईक्षाम्, चक्रे, कस्मिन्, अहम्, उत्क्रान्ते, उत्क्रान्तः, भविष्यामि, कस्मिन्, वा, प्रतिष्ठिते, प्रतिष्ठास्यामि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः	=वह पुरुष	कस्मिन्	=किसके
सृष्टिविषये	=सृष्टिकी रचना विषे	उत्क्रान्ते	=निर्गमनमें याने निकलनेपर
इति	=ऐसा	उत्क्रान्तः	=निकसाहुआ
ईक्षाम्	=अवलोकन	भविष्यामि	=होऊंगा
चक्रे	=करताभया कि	वा	=और
अहम्	=मैं		

कस्मिन्=किसके	प्रतिष्ठा स्यामि=स्थित रहूंगा
प्रतिष्ठिते=स्थिति में	

भावार्थ ।

स ईक्षांचक्र इति । पिप्पलाद मुनि फिर कहते हैं, हे ऋषि ! जो षोड-शकलावाला पुरुष है वह सृष्टिके रचना विषे ऐसा चिन्तन करने लगा कि इस स्थूल शरीर से किस कर्त्ता विशेष के उत्क्रमण करने से मैं स्वयं प्रकाश आनन्दरूप आत्मा उत्क्रमण करता हुआसा मालूम हूंगा, और फिर शरीर में किसके स्थित होने से मैं स्थितिवाला प्रतीत होऊंगा ॥ ३ ॥

मूलम् ।

स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियम् मनोऽन्नमन्नाद्वीर्य्यं तपो मन्त्राः कर्म्मलोका लोकेषु च नाम च ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

सः, प्राणम्, असृजत, प्राणात्, श्रद्धाम्, खम्, वायुः, ज्योतिः, आपः, पृथिवी, इन्द्रियम्, मनः, अन्नम्, अन्नात्, वीर्यम्, तपः, मन्त्राः, कर्मलोकाः, लोकेषु, च, नाम, च ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
सः=वह पुरुष	मनः=मन को
प्राणम्=सब अधिकारियों में मुख्य प्राण को	अन्नम्=अन्न को
असृजत=सृजता भया	च=और
प्राणात्=प्राण से	अन्नात्=अन्नपरिपाक से
श्रद्धाम्=आस्तिक्य बुद्धिको	वीर्यम्=सब कर्मों के साधक बल को तथा प्रजाउत्पादन सामर्थ्य को
खम्=आकाश को	तपः=तप को
वायुः=वायु को	मन्त्राः=मन्त्रों को याने ऋक् यजुःसाम अथर्व वेदोंको
ज्योतिः=तेज को	
आपः=जल को	
पृथिवी=पृथिवी को	
इन्द्रियम्=दशों इंद्रियों को	

कर्म=अग्निहोत्रादिक कर्म को	लोकेषु=लोकों विषे
लोकाः=कर्मों के फलों को	नाम=देवदत्त यज्ञदत्तादि नामों को
च=और	असृजत=रचता भया

नोट— वायुः आपः पृथिवी मन्त्राः लोकाः ये प्रथमा विभक्तिके रूप हैं परन्तु इस मन्त्रमें अर्थ द्वितीयाविभक्ति का देते हैं ॥

भावार्थ ।

स प्राणेति । हे ऋषि ! वह षोडशकलावाला पुरुष जो परमात्मा है प्रथम प्राणों को उत्पन्न करता भया, और प्राणसे श्रद्धा याने आस्तिक बुद्धिको जो सम्पूर्ण प्राणियों को शुभ कर्म में प्रवृत्ति का हेतु उत्पन्न करता भया, फिर आकाश वायु तेज जल और पृथिवी को उत्पन्न करता भया, फिर चक्षुरादि पांच ज्ञानेन्द्रियों को उत्पन्न करता भया, फिर हस्तादि पांच कर्मेन्द्रियों को उत्पन्न करता भया, फिर अन्तःकरण को रचता भया, फिर व्रीहियवादि अन्न को उत्पन्न करता भया, फिर अन्न से वीर्यको उत्पन्न करता भया, फिर चित्तकी शुद्धिका हेतुभूत जो तप है उसको उत्पन्न करता भया, फिर कर्मों का साधन जो कि ऋग् यजु साम अथर्वण आदि मंत्र हैं, उनको उत्पन्न करता भया, फिर होतारूप अग्नि को उत्पन्न करता भया, फिर कर्मों के फलभूत लोकादि को उत्पन्न करता भया, उन लोकों में फिर प्राणियों को उत्पन्न करता भया, फिर उनके नाम देवदत्त यज्ञदत्त आदिको उत्पन्न करता भया ॥ ४ ॥

मूलम् ।

स यथेमा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रायणाः समुद्रम्प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे समुद्र इत्येवं प्रोच्यते एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडशकलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते तासां नाम रूपे पुरुष इत्येवम्प्रोच्यते स एषोऽकलोऽमृतो भवति तदेष श्लोकः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

सः, यथा, इमा, नद्यः, स्यन्दमानाः, समुद्रायणाः, समुद्रम्, प्राप्य, अस्तम्, गच्छन्ति, भिद्येते, तासाम्, नामरूपे, समुद्रः, इति, एवम्, प्रोच्यते, एवम्, एव, अस्य, परिद्रष्टुः, इमाः, षोडशकलाः, पुरुषायणाः, पुरुषम्, प्राप्य, अस्तम्, गच्छन्ति, भिद्येते, तासाम्, नाम, रूपे, पुरुषः, इति, एवम्, प्रोच्यते, सः, एषः, अकलः, अमृतः, भवति, तत्, एषः, श्लोकः ॥

अन्वयः	पदार्थ
सः	वह दृष्टान्त इस बारे में ऐसा है कि
यथा	जैसे
स्यन्दमानाः	चलती हुई
समुद्रायणाः	समुद्रविषे गमन करने वाली
इमाः	ये
नद्यः	नदियां
समुद्रम्	समुद्र को
यदा	जब
प्राप्य	प्राप्त होकर
अस्तम्	अभावको
गच्छन्ति	प्राप्त होती हैं
च	और
तासाम्	उन नदियों के
नामरूपे	नाम और रूप दोनों नष्ट होजाते हैं
तदा	तब
केवलम्	केवल
समुद्रः	समुद्रनाम
इति	करके

अन्वयः	पदार्थ
एवम्	ही
प्रोच्यते	कहाजाताहै
एवम् एव	ऐसेही
यदा	जब
अस्य परिद्रष्टुः	इस साक्षी पुरुषके
इमाः	ये
पुरुषायणाः	पुरुषमें गमन करने वाली
षोडशकलाः	प्राणादि षोडश कला
पुरुषम्	पुरुष को
प्राप्य	प्राप्त होकर
अस्तम्	अभाव को
गच्छन्ति	प्राप्त होती हैं
च	और
तासाम्	उन के
नामरूपे	नाम और रूप दोनों
भिद्येते	नष्ट होजाते हैं
तदा	तब
पुरुषः	पुरुष

इति=करके
एवम्=ही
प्रोच्यते=कहाजाता है
यः एवं विद्वान्=जो उपासक उस पुरुष को इस प्रकार जानता है
सः=सो
एषः=वह उपासक
अकलः=कलारहित
च=और
अमृतः=मरणरहित
भवति=होता है
तत्=इस विषे
एषः=यह आगेवाला
श्लोकः=मंत्र प्रमाण है

भावार्थ ।

स यथेति । आत्मज्ञानकी प्राप्तिके लिये पूर्व अध्यारोप करके जगत्की उत्पत्ति को कहा है, अब तिसके अपवादको दार्ष्टांत द्वारा कहते हैं ॥ यथेति ॥ जैसे जब गंगा यमुना सरस्वतीआदिक नदियें चल करके समुद्र में लय होजाती हैं और उनके नाम और रूप सब नाश होजाते हैं, और उनका जल समुद्र के जलके साथ अभेदको प्राप्त होजाता है तब एक समुद्र ही कहा जाता है वैसेही दृष्टान्त अनुसार सोलहों कला याने पाच कर्मेन्द्रिय पांच ज्ञानेन्द्रिय पांचप्राण और एक मन जब पुरुष को प्राप्त होकर लय होजाते हैं तब उनके नाम रूपका नाश उसी पुरुषमें ही होजाता है, पूर्वोक्त षोडशकलों का उपादान और बुद्धिका द्रष्टा जो पुरुष यानी आत्मा है, वह उन कलाओं से रहित है, जो उपासक पुरुष याने आत्मा को इस प्रकार जानता है, वह जन्म मरणसे रहित होजाता है, इसी अर्थको आगेवाला मन्त्र भी कहता है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

अरा इव रथनाभौ कला यस्मिन् प्रतिष्ठिताः तं वेद्यं पुरुषं वेद यथा मा वो मृत्युः परिव्यथा इति ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

अराः, इव, रथनाभौ, कलाः, यस्मिन्, प्रतिष्ठिताः, तम्, वेद्यम्, पुरुषम्, वेद, यथा, मा, वः, मृत्युः, परिव्यथाः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
इव=जैसे		पुरुषम्=पुरुष को	
रथनाभौ=रथचक्रनाभि विषे		यूयम्=तुम सब	
अराः=अरा हैं उसी प्रकार		इति=उक्त प्रकार से	
यस्मिन्=जिस पुरुष विषे		वेद=जानो	
कलाः=प्राणादि कला		यथा=जिसके जानने से	
प्रतिष्ठिताः=स्थित हैं		वः=तुमको	
तम्=तिस		मृत्युः=मृत्यु	
वेद्यम्=जानने योग्य		मा=न	
		परिव्यथाः=पीड़ा देवेगा	

भावार्थ ।

अरा इवेति । रथ के पहियों के बीच में जो तिरछी २ लकड़ियां लगी रहती हैं उनका नाम अरा है, वे अरे जैसे रथके चक्रों में लगे रहते हैं तैसे ये प्राणादिक षोडशकला भी उस पुरुष में स्थित हैं यदि उस जानने योग्य पुरुषको आप अधिकारी लोग जानोगे तो मृत्युरूपी अज्ञानको कभी नहीं प्राप्त होगे ॥ ६ ॥

मूलम् ।

तान् होवाचैतावदेवाहमेतत्परं ब्रह्म वेद नातः परमस्तीति ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

तान्, ह, उवाच, एतावत्, एव, अहम्, एतत्, परम्, ब्रह्म, वेद, न, अतः, परम्, अस्ति, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ सः पिप्पलादः=वह पिप्पलाद आचार्य		अहम्=मैं	
इति=ऐसा शिक्षा करके		एतत्=इस	
ह=पुनः		परम्=पर	
तान्=उन शिष्यों से		ब्रह्म=ब्रह्म को	
उवाच=कहता भया कि		एतावत्=इतना	
		एव=ही	

वेद्=जानताहूं	कश्चित्=कुछ और
अतः=इस से	न=नहीं
परम्=आगे	अस्ति=है

भावार्थ ।

तानीति । उन छत्रों शिष्यों से पिप्पलादमुनि कहते हैं कि हे श्रेष्ठ ऋषियो ! इस परब्रह्म को मैं इतनाही जानताहूं, इससे अधिक कुछ नहीं है, उसके स्वरूप को जैसा मैं जानता था सो आप लोगों से मैंने कहा, इससे और अधिकतर जानने के योग्य नहीं है ॥ ७ ॥

मूलम् ।

ते तमर्चयंतस्त्वं हि नः पिता योऽस्माकमविद्यायाः परं पारं तारयसीति नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः ॥ ८ ॥

इति प्रश्नोपनिषद्षष्ठःप्रश्नः समाप्तोयम् ॥

पदच्छेदः ।

ते, तम्, अर्चयन्तः, त्वम्, हि, नः, पिता, यः, अस्माकम्, अविद्यायाः, परम्, पारम्, तारयसि, इति, नमः, परमऋषिभ्यः, नमः, परमऋषिभ्यः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
इति=	पिप्पलादमुनिके ऐसे उपदेश को सुनकर	+ इति ऊचुः=	ऐसा कहते भये कि
ते=	वे कबंधी कात्यायन आदि छओं शिष्य	+ गुरो=	हे गुरो हे भगवन्
तम्=	उस पिप्पलाद गुरुको	हि=	निश्चय करके
अर्चयन्तः=	पूजन करते हुये	त्वम्=	आप
		नः=	हम लोकों के
		पिता=	पिता
		+ असि=	हो
		यः=	जो आप
		अस्माकम्=	हमको

अविद्यायाः=अविद्यारूप अन्धकारके	परमऋषिभ्यः=विद्या संप्रदाय चलानेवाले तुम सरीखे परम ऋषियों के अर्थ
परम्=परले	नमः=नमस्कार है
पारम्=किनारे को	परमऋषिभ्यः=परम ऋषियोंके अर्थ
तारयसि=पार करते भये	नमः=नमस्कार है
अतः=इस उपकार के कारण	

भावार्थ ।

ते तमिति । वे कबन्धी कात्यायन आदि छवों शिष्य पिप्पलाद गुरु से ब्रह्मविद्याको प्राप्त होकर पिप्पलादजी का पूजन करते भये, और कहने लगे कि निश्चय करके आपही हम लोगों के पिता हैं, आपही हम लोगो के ब्रह्मविद्यादानकर्ता गुरु हैं, आपने हम लोगोंको जन्म मरण का हेतु जो अविद्या है उससे पार करके मोक्षको प्राप्त किया है, आपही ने ब्रह्मविद्यारूपी जहाज करके अविद्यारूपी समुद्र से हमलोगों को मोक्षरूपी पारको प्राप्त किया है, आपही ब्रह्मविद्याके संप्रदायके प्रवर्तक हैं, आपके प्रति हम लोगोंका नमस्कार हो, पुनः २ नमस्कार हो ॥ ८ ॥

इति प्रश्नोपनिषदि षष्ठः प्रश्नः समाप्तोयम् ॥

इति प्रश्नोपनिषद् सम्पूर्णम् ॥